दो शब्द

रेणु को मैंने देखा है। अपनी इन दो आँखों से ही। मिट्टी की आँखों से। बरसों तक। उसका कीर्तन सुना है। मैंने रो-रोकर।

किन्तु रेणु के शरीर का स्पर्श कभी नहीं किया मैंने। मेरे लिए वह शरीर सदा ही पवित्र बना रहा है। भगवान के मन्दिर के समान पवित्र। जाह्नवी की जलधार सा पावन।

समाज की आँखों में रेणु वेश्या है, किन्तु मेरी आँखों में देवी। मैं उसका मुख देखता रहा हूँ। मेरा जी चाहता रहा है कि उसके पाँव छू लूँ। वह छूने दे तो।

संसार के न्याय से पाप-पंक में डूबी है रेणु। किन्तु मेरे लिए तो वह पंकज के समान पवित्र है। वह पंकज जिसको पाप के पानी ने कभी छुआ ही नहीं।

पाप का पंकिल पानी ऊपर उठा। बार-बार ऊपर उठा। किन्तु पंकज भी प्रत्येक बार ऊपर उठ गया। ऊपर, और ऊपर। उसके ऊपर उठने की कोई सीमा ही नहीं। पानी को प्रत्येक बार परास्त कर दिया उसने। और अन्तिम समय तक पानी परास्त ही होता रहेगा।

बड़े-बड़े पण्डित मुझसे कहते हैं कि मैं मनुष्य को परिस्थिति के पारावार में डूबता-उतराता हुआ पुतला मान लूँ। किन्तु मेरा मन गवाही नहीं देता। पुतले के लिए तो परमेश्वर का अस्तित्व नहीं होता। मनुष्य के लिए होता है। परमेश्वर की ओर आँखें उठा कर परिस्थिति के पार जा पहुँचता है मनुष्य।

और क्या कहूँ? कोई तर्क करेगा। मैं मौन रहूँगा। जानता हूँ कि तर्क जीवन के मर्म में नहीं पैठ सकता। धूल ही फाँकता रहता है। रेणु को इन आँखों से देख लेने के उपरान्त तर्क नहीं हो सकेगा मुझसे। मैं क्षमा चाहता हूँ।

यायावर

न केवल रोचक तथा आकर्षक पुस्तकें इस माला के अन्तर्गत प्रकाशित हों, प्रत्युत उपयोगी तथा प्रेरणात्मक साहित्य भी सस्ते दामों में पाठकों को मिले, यही हमारा उद्देश्य है।

नटराज पॉकेट बुक्स

पंकज और पानी

यायावर

भारती साहित्य सदन - न. ई दिल्ली

पहिला परिच्छेद

नववधू के नवल वेष में बैठी थी रेणु। सिर से पाँव तक रँग-रँग के रेशमी वस्त्रों में लिपटी हुई। सोने से पीली। मणि-मुक्ता से रक्त और अवदात। वस्त्रों में से सैंट की भीनी-भीनी सुगन्ध बिखर रही थी। आभूषणों में से किरण-जाल। किन्तु रेणु के किंचित अवगुण्ठित मुख पर प्रणयाभिलाष का प्रसाद नहीं था। विषाद से पाण्डुर था वह मुख। पुट पर पुट पाण्डुरता।

पास-पड़ौस की प्रगल्भ प्रमदाएँ रेणु से परिहास कर रही थीं। एक ने उसका अवगुण्ठन उठाना चाहा। दूसरी ने उसके गाल पर चिकोटी काट ली। तीसरी पुरुष का अभिनय करती हुई रेणु के रूप का बखान करने लगी। रेणु को अभिसार का आमन्त्रण दे रही थी वह। लोकगीत की सहायता से। चौथी ने रेणु को समझाया कि उसे पति के पास जाकर पहिले मान करना चाहिए और फिर प्यार-परीत।

किन्तु रेणु के अधरों पर मुस्कान नहीं जागी। मुख नहीं खिल पाया उसका। और न एक शब्द ही उसके मुख से निकला। पथराई-सी बैठी रही वह। वह जैसे वर्तमान में विद्यमान ही न हो। वर्तमान का अस्तित्व ही नहीं हो जैसे। वे सब सखी-सहेलियाँ जैसे वहाँ पर हों ही नहीं।

शैशव के स्मृतिकूप में उतरकर सिर छुपा रही थी रेणु। वहाँ पति का प्रणय नहीं था तो प्रतारणा का भय भी नहीं था। यौवन का उत्कट उन्माद नहीं था वहाँ। किन्तु यौवन का अवसाद और विषाद भी नहीं था। वहाँ थी एक अबाध स्वच्छन्दता। और आनन्द का अतिरेक अनुभव करते रहने की एक अगाध क्षमता भी।

अपनी किशोर अवस्था के पादप पर प्रफुल्लित प्रसून चुन रही थी रेणु।

अनेक प्रसून थे। अनेक रँग के। अनेक प्रकार की सुगन्ध में सराबोर। अनन्त आशा का रस पी-पीकर पुष्ट हुआ था एक-एक प्रसून। सपनों की जगमगाती ज्योत्स्ना में धुला था। शत-शत आकांक्षाओं के इन्द्रधनु में रँगा गया था। परिजन की संवेदना का सौरभ संचित था प्रसून-प्रसून के अन्तर में।

अब तो शैशव तथा कैशोर ही रेणु की जमापूँजी रह गए थे। मानो स्वाच्छन्द्य और आनन्द फिर कभी लौटकर उसके निकट नहीं आ पाएँगे। मानो उसके जीवन-तरु पर फिर कभी कोई अन्य प्रसून प्रफुल्लित नहीं हो सकेगा। जैसे उसका सारा-का-सारा भविष्य...

भविष्य ! उसका अपना भविष्य ! ! किसी आसन्न आशंका से आपाद-मस्तक काँप उठी रेणु। कुछ काल उपरान्त मित्तिर महाशय वहाँ आएँगे और...नहीं, नहीं ! रेणु ने रुआँसी होकर अपना फूल-सा मुखड़ा अपनेफूल-से हाथों से आवृत कर लिया। उसका मानस फिर वर्तमान से विरत होकर, भविष्य का भय मानकर, भूतकाल की ओर लौट चला।

अभी उस दिन की ही तो बात थी। रेणु अपने घर में बैठी नानी की कहानी पढ़ रही थी। राजकुमार ने अनेक परीक्षाएँ पार करके राजकुमारी का पता पा लिया था। और वह राजकुमारी को राक्षस के बन्धन से छुड़ाया ही चाहता था। अभी, इसी क्षण। पुस्तक के पृष्ठ जल्दी-जल्दी पलट रही थी रेणु। साँस रोक कर। उसको लेखक पर क्रोध भी आ रहा था। कलमुँहा झूठमूठ देर लगा रहा था। राजकुमारी को छुड़ाने में...

सहसा किसी ने रेणु का नाम लेकर पुकारा था। बाबा का स्वर था। बैठकखाने से बोल रहे थे बाबा। कह रहे थे : "रेणु ! अरी ओ रेणु ! एक प्याला चाय तो ले आ, मां !"

बाबा के पास जब-जब कोई बाहर का व्यक्ति आता था, तब-तब वे इसी प्रकार रेणु को पुकारते थे। चाय के लिए। घर में कई और प्राणी थे। भाई थे। भाभियाँ थीं। दो दो। किन्तु बाबा तो रेणु का ही राग गाते रहते थे।

उस दिन बाबा की पुकार सुनकर तुरन्त नहीं उठी थी रेणु। राक्षस और राजकुमार का युद्ध हो रहा था। भीषण। किसी भी क्षण...

बाबा ने फिर रेणु का नाम लेकर पुकारा था। अब की बार रेणु को बाबा पर क्रोध आ गया था। ऐसा भी क्या हो गया!! राक्षस के मरने में देर थोड़े ही थी!! बाबा बाधा डाल रहे थे। एक प्याला चाय के लिए! और राजकुमारी राजकुमार की देह से बहता हुआ रक्त देखकर रो रही थी। रेणु ने पुकार कर कह दिया था: "आई, बाबा! अभी आ रही हूँ।"

और रेणु ने कथा समाप्त करके ही चाय बनाई थी। चाय में मीठी-मीठी चीनी डाली थी। उसके मानस में भी माधुर्य का संचार हो रहा था। दूध-से धवल राजकुमार के हाथ से काला-काला राक्षस मारा जा चुका था। राजकुमार राजकुमारी का हाथ पकड़कर कारागार से बाहर ला रहा था। और राजकुमारी खिलखिला कर हँस रही थी।

रेणु चाय लेकर बैठकखाने की ओर चली तो उसके पांव धरती पर नहीं पड़ रहे थे। आकाश में उड़ी जा रही थी रेणु। एक दिन वैसा ही दूध-सा धवल राजकुमार दूर देश से आकर...रेणु की पलकें सपनों के भार से मुँद गई थीं।

बाबा के पास एक अन्य पुरुष उपासीन थे। काले-काले। बड़ी आयु वाले। रेणु ने एक बार उनकी ओर देखा था। फिर अनायास ही उसके मुख से निकल गया था: "हाय मां! मित्तिर महाशय!!"

रेणु के हाथ से चाय का प्याला छूट पड़ा था। बाबा उसके ऊपर बिगड़े थे। और वह उल्टे पाँव भाग आई थी। बड़ी भाभी के पास। भय से अभिभूत होकर।

पास में ही रहते थे मित्तिर महाशय। बड़ी-सी बाड़ी थी उनकी। पड़ौस में सबसे ऊँची। और उनके हाथ में बड़ा-सा पैसा भी था। छोटे-से नगर के बड़े-से धनवान व्यक्ति थे वे। सरकार के दरबार में भी उनका दबदबा था। सब उनका मान करते थे। उनसे दो बातें करके अपने-आप को धन्य समझते थे सब।

किन्तु रेणु को उनसे भय लगता था। कई-एक दिन से। मित्तिर महाशय के साथ उसके ब्याह की बात चल रही थी। बड़ी भाभी ने कई बार चुटकी काटी थी। मित्तिर महाशय का नाम इस प्रकार लिया था मानों वे

रेणु के स्वप्नलोक से उतरने वाले राजकुमार हों। रेणु चुप रही थी। जुगुप्सा से मुख फेर लिया था उसने।

और फिर रात को उसने वह दुःस्वप्न देखा था। एक गलित-विगलित वृद्ध उसको अपने आलिंगन में आबद्ध करने के लिए आतुर हो रहा था। पान की पीक से सड़े हुए दाँतों वाला मुख मुस्करा कर उसके अपने मुख का चुम्बन करना चाह रहा था। रेणु ने उसको पहचान लिया था। वह था वही तारापद मित्तिर ! पड़ौस के मित्तिर महाशय !!

चीत्कार करके जाग उठी थी रेणु। बड़ी भाभी ने भी जागकर उसके कमरे में प्रवेश किया था। रेणु को भयभीत देखकर भाभी ने उसे अपने बाहुपाश में भर लिया था। और पूछा था : "हुआ क्या रेणु ?"

रेणु ने रोकर कहा था :

"सपने में साँप ने काट लिया, भाभी !"

भाभी ने दोनों हाथ जोड़कर देवता को प्रणाम किया था। और कहा था : "तुम्हारी आयु बढ़ गई, माँ ! बहुत बरस जीओगी। दूधों नहाओगी। पूतों फलोगी। सपने में साँप का काटा बहुत शुभ होता है, रेणु !"

रेणु सारी रात नहीं सो पाई थी। दूसरे दिन उसने मित्तिर महाशय के विषय में सखी-सहेलियों से पूछा था। बार-बार बात चलाकर। एक सखी ने कहा था : "बूढ़े का धन गिनती में नहीं आ पाता। घर की घोड़ा-गाड़ी है।"

दूसरी ने बतलाया था : "धनवान तो हैं मित्तिर महाशय, किन्तु मनुष्य नहीं हैं। दो-दो ब्याह किए। और दोनों स्त्रियों को गला घोंटकर मार डाला।"

रेणु के रोंगटे खड़े हो गये थे। उसको बार-बार ऐसा प्रतीत हुआ था जैसे लम्बी लम्बी, हड़ियल अँगुलियों वाले दो कर्कश हाथ उसके कण्ठ की ओर बढ़ रहे हैं और दूसरे क्षण वे उसके प्राण ले लेंगे। और उसने बारम्बार आत्मत्राण करने के लिये अनायास ही अपनी छोटी-छोटी, लाल-लाल, नरम-नरम हथेलियों से अपना कण्ठ ढक लिया था।

भाभी पर प्रकट की थी रेणु ने अपनी आशंका। मित्तिर महाशय अपनी

स्त्रियों को गला घोंट कर मार डालते हैं। भाभी ने हँसकर कहा था :

"तुम को किसीने बहका दिया, रेणु ! देवता का अवतार हैं मित्तिर महाशय। भगवान ने उनको धन का सुख दिया है। परिवार का सुख नहीं दिया। इतना बड़ा घर मिला। किन्तु घर बसाने वाली नहीं रह पाई। न घर में लड़का-बाला ही हुआ। नौकर-दाई घर लूट रहे हैं। उस घर में जाकर तुम राज करोगी, रेणु !"

किन्तु रेणु को राज करने की अभिलाषा नहीं थी। वह तो मित्तिर महाशय से दूर-दूर रहना चाहती थी। और उनकी कालमूर्ति को अपने मानस से मिटाने के लिए वह और भी लगन के साथ नानी की कहानियाँ पढ़ने लगी थी। सारे मोहल्ले की सखी-सहेलियों से माँग-माँगकर। रोज ही उसका राजकुमार काले-काले राक्षस को मार देता था। और राजकुमारी को छुड़ा लेता था। मित्तिर महाशय को भूलने लगी थी रेणु।

किन्तु मित्तिर महाशय रेणु को नहीं भूले थे। रेणु के अप्रतिम रूप की ख्याति उन्होंने चारों ओर सुनी थी। रेणु का रूप अपनी आँखों से देखने आए थे वे। रेणु को अपने घर की रानी बनाने के पूर्व। और रेणु के बाबा ने मान ली थी उनकी बात। तभी तो बाबा ने रेणु को चाय लाने के लिए कहा था।

उस एक क्षण के साक्षात्कार में ही रेणु ने मित्तिर महाशय को देख लिया था। वे तो वही थे। उस सपने में उसकी ओर बढ़ने वाले वृद्ध। पान की पीक से सड़े हुए दाँतों वाले। चश्मे के काँच में से दो निर्मम आँखें निर्निमेष उसकी ओर देख रही थीं। मानो उसको बींध देंगी वे आँखें। रेणु का रोम-रोम कंटकित हो गया था।

दो भाइयों की एक अकेली बहिन थी रेणु। दो भाभियों की एक-अकेली ननद। बाबा की एक-अकेली बेटी। लाड़ली बेटी। रेणु-रेणु कह कर अघाते नहीं थे बाबा। कभी-कभी बाबा को क्रोध आता था तो घर का कोई व्यक्ति उनके निकट जाने का साहस नहीं कर पाता था। किन्तु रेणु उनके पास जाकर, उनकी पीठ पर झूलकर, उनको ऐसे शान्त कर देती थी जैसे सपेरा अपने चुटियाए हुए साँप को।

फिर भी रेणु का परामर्श किसी ने नहीं माँगा था। बाबा ने भी नहीं। भाइयों ने भी नहीं। भाभियाँ तो उसके भाग्य को सराह रही थीं। बड़े घर की बहू बनने जा रही थी रेणु। कभी-कभी पीहर लौटकर आएगी तो घोड़ा-गाड़ी में बैठकर। नौकर-दाई को साथ लिए हुए। सुख के स्वप्नलोक में जा पहुँचती थीं उसकी भाभियाँ।

और तब एक दिन, एक शुभ मुहूर्त में रेणु की बरात आई थी। बाजे-गाजे बजे थे। खान-पान और राग-रँग जमा था। रेणु को उबटन से नहलाया गया था। और सुन्दर प्रकार से सजाया गया था। रँग-रँगीले वस्त्रों से। बहुमूल्य आभूषणों से भी। ब्राह्मण ने अग्निदेवता को साक्षी मानकर मन्त्रोच्चार किया था। और बाबा ने रेणु का कोमल-कोमल कर-किसलय उस ककांल के कर्कश कराग्र में दे दिया था।

रेणु का जी चाहा था कि अपना वह हाथ मण्डप में धधकती हुई अग्नि-शिखा में डालकर झुलस दे। दूषित हो गया था वह हाथ। उसका अपना नहीं रह गया था वह हाथ। किन्तु हुआ था सर्वथा विपरीत। उसी हाथ पर उसने मित्तिर महाशय के घर से आई हुई सोने की चूड़ियाँ पहनी थीं। सोने का ही, हीरों से जड़ा हुआ, कंकण भी। उस हाथ की अँगुलियों पर उसने मित्तिर महाशय की दी हुई अँगूठियाँ पहिनी थीं। दो-दो अँगूठियाँ। एक लाल नग वाली। दूसरी सफेद नग वाली।

और मित्तिर महाशय के घर से आए हुए वस्त्र पहिनकर वह मित्तिर महाशय की घोड़ा-गाड़ी में जा बैठी थी। मित्तिर महाशय के घर जाने के लिए। भाभियों की आँखों में पानी था। भाइयों की आँखों में भी। बाबा रो रहे थे। सखी-सहेलियाँ भी रो रही थीं। केवल रेणु की आँखों में आँसू नहीं थे। कोई भावना ही नहीं रह गई थी रेणु के मानस में।

अनिश्चित भविष्य की आशंका से भी आतंकित नहीं था रेणु का मानस। आँखों में से वह भयावह सपना भी सरक गया था। पाषाण-प्रतिमा सी विजड़ित बैठी थी वह। उसको यह ज्ञान ही नहीं रहा था कि कब वह घोड़ा-गाड़ी उसके घर के आगे से चली, कब वह घोड़ा-गाड़ी मित्तिर महाशय के घर के सामने रुकी और कब उसको उतारकर ऊपर के कमरे में

पहुँचा दिया गया ।

सहसा पास में बैठी स्त्रियों में सरसराट-सा होने लगा। एक-दो लड़कियों ने रेणु की देह गुदगुदा दी । एक-दो कामिनियों ने रेणु के कान में कुछ बातें कुनमुना दीं । मीठी-मीठी बातें । और फिर वे सब-की-सब उठकर चली गईं । रेणु अब अकेली बैठी थी । बड़े-से कमरे में । सुसज्जित था वह कमरा । विद्युत् प्रकाश से भरा हुआ । और उस ओर पड़ा था वह पुष्प-मालाओं से लदा हुआ प्रशस्त पलंग । रेणु उठकर खड़ी हो गई ।

मित्तिर महाशय ने कमरे में प्रवेश किया । रेणु की पीठ थी उस ओर । इसलिए रेणु ने बूढ़े की रूप-सज्जा नहीं देखी। मित्तिर महाशय अपनी ओर से नवयुवक बनकर ही आए थे। और उन्होंने खाँसकर रेणु का वाम हस्त अपने दक्षिण हस्त में थाम लिया। उसी कर्कश हस्त में ! लम्बी-लम्बी अँगुलियों वाले हड़ियल हस्त में !! रेणु के कोमल-कोमल हाथ को मानो विषैले कीट ने काट लिया हो। किन्तु फिर भी वह छुड़ा नहीं पाई अपना हाथ ।

पतिदेव उसे पलंग की ओर ले चले । पुष्प-मालाओं से सजे, रुपहले पाँवों वाले पलंग की ओर । मसृण गद्दे से मण्डित पलंग की ओर। मसहरी से ढके हुए और तकियों से लदे हुए पलंग की ओर । साथ ही मित्तिर महाशय ने अपना मौन भंग किया। वे बोले : "मुझसे लाज लग रही है, रेणु !"

रेणु ने उत्तर नहीं दिया।

मित्तिर महाशय ने कहा : "एक आँख उठाकर मेरी ओर देख लो ना, रेणु !"

रेणु ने उनकी ओर मुख नहीं फेरा।

मित्तिर महाशय ने पूछा : "तुम बोलती क्यों नहीं, रेणु !"

रेणु ने मुख नहीं खोला ।

मित्तिर महाशय ने उसका अवगुण्ठन हटाने के लिए उसकी साड़ी का आँचल खींचा । साड़ी सिर पर से उतरकर रेणु के गले में आ गिरी।

रेणु ने विरोध नहीं किया। और रेणु के जाज्वल्यमान रूप की ज्योति से वह सजा हुआ कमरा भी जगमगा उठा ।

उसी समय मित्तिर महाशय के मुख से निकला : "ओ मां ! द्वार तो खुला छोड़ दिया।"

मित्तिर महाशय रेणु का हाथ छोड़कर द्वार की ओर बढ़े।

और दूसरे क्षण रेणु भी विद्युत्शिखा सी सिहर कर द्वार की ओर दौड़ पड़ी। मित्तिर महाशय द्वार तक पहुँचे, उसके पूर्व ही वह द्वार पार कर चुकी थी रेणु। और उसने वह द्वार ही पार नहीं किया, मकान की सीढ़ियाँ भी पार कर गई। और मकान का सिंहद्वार भी। रेणु एक पल में सड़क पर चली आई। और साँस रोककर अपने घर की ओर भाग खड़ी हुई।

: २ :

गली के मोड़ पर चाचा की बड़ी लड़की की ससुराल थी। रेणु वहाँ अनेक बार आ चुकी थी। बड़ी अथवा छोटी भाभी के साथ। अकेली कभी नहीं। उसका अकेले वहाँ जाना निषिद्ध था। किन्तु आज उस मकान को देखते ही वह अकेली ही उसमें घुस गई। और सीधी दीदी के कमरे में जाकर दीदी के गले से लिपट गई रेणु। दीदी बच्चे को दूध पिला रही थी। रेणु को रोती देख कर दीदी भी रोने लगी।

मित्तिर महाशय रेणु के बाबा के पास जाकर रोए। रेणु ने उनकी प्रतिष्ठा को पददलित किया था। सारे नगर में उनकी हँसाई होने वाली थी। बाबा क्रोध से काँप उठे। रेणु उस समय उनके सामने होती तो वे उसके प्राण ले लेते।

किन्तु रेणु तो दीदी की गोद में मुँह छुपाकर फफक रही थी। दीदी ने दोनों घरों में खबर भिजवा दी कि रेणु उसके पास है। रेणु के दो बड़े भाई वहाँ आए। दोनों भाभियाँ भी। फिर बाबा भी आ पहुँचे। सब रेणु को समझाने लगे। कहने लगे कि वह तुरन्त ही मित्तिर महाशय के घर लौट जाए।

रेणु किन्तु अपने हठ पर अटल रही। कहने लगी कि वह सिर पटक-पटक कर प्राण दे देगी, किन्तु मित्तिर महाशय की बाड़ी में पाँव नहीं रक्खेगी। बाबा और भाई उसको बलात उठाकर ले जाना चाहते थे। किन्तु बाबा को दीदी ने समझा दिया। भाइयों को भाभियों ने। वे कहने लगीं

कि रेणु बालिका है, सयानी होकर सब समझ जाएगी।

बाबा ने मित्तिर महाशय की बाड़ी पर जाकर जामाता के पाँव पकड़ लिए। बिगड़ैल बेटी की ओर से क्षमा माँग रहे थे बाबा। बाबा ने कहा: "रेणु बच्ची है, मित्तिर महाशय! पन्द्रह बरस की भी नहीं हुई है। कुछ दिन के लिए आप धैर्य धारण कीजिए। सयानी होकर मेरी रेणु सब समझ जायेगी। आपका घर अवश्य बसाएगी मेरी रेणु। आप मन मैला मत करें।"

कई दिन पीछे रेणु दीदी के घर से अपने घर लौट आई। और फिर सखी-सहेलियों से माँग-माँग कर नानी की कहानियाँ पढ़ने लगी। राजकुमार फिर राक्षस से युद्ध करने लगा। राजकुमारी को कारावास से मुक्त करने के लिए। एक बार फिर से वह मित्तिर महाशय को भूलती जा रही थी। मित्तिर महाशय भले ही उसे न भूल पाए हों। हाँ, वे बीच-बीच में उस के घर का चक्कर लगा जाते थे। और उनके आने का समाचार सुनते ही रेणु कमरे के किवाड़ बन्द करके छुप जाती थी।

अपने घर में भी अब रेणु के दिन ही कट रहे थे एक प्रकार से। बाबा बात-बात में उस पर बिगड़ बैठते थे। बड़े भैया भी। भाभियाँ ताने मारती थीं। कहती थीं: "उपन्यास पढ़ने थे तो तुम मित्तिर महाशय की बाड़ी में क्यों नहीं रहीं? यहाँ खाओगी तो काम करना पड़ेगा।" रेणु छुप-छुपकर रो लेती थी। किन्तु घर का काम उससे नहीं होता था। काम करना उसको आता ही नहीं था। किसी ने उससे कभी कुछ काम करवाया ही नहीं था इसके पूर्व।

दो-चार बार वह दीदी के पास गई। घर के लोगों से ऊब कर। किन्तु दीदी ने उसको समझाते-समझाते सुबह से साँझ कर दी। वह कहती रही: "पागल मत बन, रेणु! तेरे जैसा राजा-घर किस-किसको मिल जाता है री? दो दिन में जी लग जाएगा। और फिर हो जाएँगे लड़के-बाले। सारे संसार की सुध भूल जाएगी तू। अपना घर बसा ले, रेणु! मित्तिर महाशय का क्या ठिकाना? अचानक चल बसे तो सारा धन दूसरों का हो जाएगा।"

रेणु ने दीदी के पास जाना छोड़ दिया। वह मित्तिर महाशय का नाम

नहीं सुनना चाहती थी। किन्तु इन सब लोगों को न जाने क्या हो गया था? जब देखो मित्तिर महाशय! वह मित्तिर महाशय के भय से घर के बाहर भी पाँव देती डरती थी। कहीं वे इधर-उधर आते-जाते मिल न जाएँ। कहीं उनकी आँख न पड़ जाए उस पर। और इन सबको लगन लगी थी कि वह मित्तिर महाशय का घर बसाए!! मित्तिर महाशय की छाया तक से काँपती थी रेणु।

रेणु की पटती थी तो एक अकेली पूरबी दीदी से। पास की बाड़ी में रहती थी वह। दूसरे तल्ले पर। अपने कमरे की खिड़की खोलकर रेणु पूरबी से बातें कर सकती थी। और प्रतिदिन होती थी उन दोनों में बातें। किन्तु पूरबी ने कभी मित्तिर महाशय का नाम नहीं लिया था। वह इधर-उधर की बातें कहकर रेणु का जी बहलाती रहती थी।

और पूरबी के पास वे उपन्यास थे। ढेर सारे। एक-से-एक अपूर्व। एक उपन्यास समाप्त हुआ कि दूसरा मिल गया। जब जी चाहता तब रेणु पूरबी के पास जा बैठती थी। घण्टों बातें होती रहती थीं दोनों में। ताश भी जम जाता था। कई बार रेणु ने पूरबी को अपने घर आने का निमन्त्रण दिया। किन्तु पूरबी आई नहीं किसी दिन। साफ-साफ इन्कार नहीं किया पूरबी ने। बस इधर-उधर का बहाना बनाकर, आजकल करके टाल दिया।

एक दिन ताश खेलते-खेलते रेणु ने पूरबी से पूछ लिया: "दीदी! तुम रँगीन साड़ी कभी नहीं पहनतीं। भला क्यों? इस मरी सफेद साड़ी को रोज-रोज लपेटकर जी नहीं ऊब उठता तुम्हारा?"

पूरबी ने उत्तर दिया: "रँगीन साड़ी है ही नहीं मेरे पास।"

"तो मुझसे ले लो। मित्तिर महाशयने एक ढेर साड़ियाँ भेजी हैं। बनारसी, शान्तिपुरी, मुर्शिदाबादी। मैं उनको नहीं पहिनती। अपने घर की साड़ियाँ पहिनती हूँ। उनमें से दो-चार साड़ियाँ तुम ले लो, दीदी! जो भी अच्छी लगें। ले आऊँ कल?"

"ऊँ···हूँ···"

"ले भी लो, दीदी! बड़ी अच्छी लगोगी। रूप खिल जाएगा तुम्हारा।"

"मैं किसको दिखलाऊँगी री अपना रूप?"

"क्यों, दीदी ! देखने वाले देखेंगे। मैं देखूँगी। तुम्हारी भाभियाँ देखेंगी। गली-मोहल्ले वाले देखेंगे। सब देखेंगे।"

"तू मुझे घर से निकलवाना चाहती है, रेणु !"

"घर से कौन निकालेगा तुमको ? और क्यों ?"

"भाई और भाभी निकाल देंगे।"

"किन्तु क्यों, दीदी !"

"मैं विधवा जो हूँ, पगली !"

"विधवा ! सो क्या होती है ?"

"जिसका पति मर जाए।"

"वह तो बड़ी अच्छी बात है, दीदी ! मिस्तिर महाशय मर जाएँ तो मैं बहुत प्रसन्न होऊँ। खूब गहने-कपड़े पहनूँ। अच्छा, दीदी ! बतलाओ तो मैं कब विधवा हूँगी ?"

"धत् रेणु ! तू कभी सयानी भी होगी ? नानी की कहानियाँ पढ़-पढ़ कर तू दूध-पीती बच्ची ही रह गई।"

"कहाँ ? अब नानी की कहानियाँ कब पढ़ती हूँ ? अब तो मैं उपन्यास पढ़ती हूँ, दीदी ! तुम्हीं तो देती हो।"

"अरी, वे उपन्यास भी तो नानी की कहानियाँ ही हैं।"

"सो कैसे ?"

"उपन्यास में जो होता रहता है वह जीवन में कभी नहीं होता, रेणु ! इसलिए।"

रेणु की समझ में नहीं आयी वह बात। किन्तु दीदी से तर्क कैसे करती। पूरबी कभी पूरी बात नहीं कहती थी। और अधूरी बात के आधार पर रेणु कोई निष्कर्ष नहीं निकाल पाती थी।

एक दिन रेणु ने फिर पूछ लिया : "अच्छा, दीदी ! लड़कियों का ब्याह क्यों होता है ?"

पूरबी बोली : "ब्याह न हो तो संसार कैसे चलेगा री !"

"क्यों नहीं चलेगा, दीदी ! चूल्हा भी जल सकता है ब्याह के बिना। दाल-भात भी पक सकता है। और...

"ओ हो, रेणु ! कैसी बातें कर रही है तू ? चूल्हा जलने से और दाल-भात पकने से ही क्या बस गया संसार ? लड़के-बाले भी तो चाहिएं।"

"लड़के-बाले ? वे क्या ब्याह से होते हैं, दीदी ! यह तो आज ही सुना !"

"तभी तो कहती हूँ कि तू सयानी नहीं हुई। तू तो पगली है।"

रेणु मुँह बाए पूरबी की ओर देख रही थी। पूरबी को हँसी आ गई। वह लाड़ के स्वर में बोली : "रेणु ! अब तू उपन्यास पढ़ना छोड़ दे।"

रेणु ने कहा : "तो और क्या करूँ, दीदी ! किसी प्रकार समय भी तो कटे। मुझसे तो कोई सीधे मुँह नहीं बोलता। जिसे देखो वही काटने को दौड़ता है।"

"तू सुसराल क्यों नहीं चली जाती ?"

रेणु सुसराल का नाम सुनकर भड़क उठी। चिल्लाकर बोली : "ओ दीदी ! तुम्हारा मुँह नोंच लूँगी। तुम भी...

और आँसू आ गए रेणु की आँखों में। पूरबी ने उसको छाती से लगा लिया। उसका सिर सहलाकर बोली पूरबी : "तू कोई काम की पुस्तक क्यों नहीं पढ़ती, रेणु !"

रेणु ने कहा : "पढ़ूँगी। किन्तु मिलेगी कहाँ ?"

"मेरे पास।"

"तो दे दो ना, दीदी ! अभी। इसी क्षण।"

"दे तो दूँगी। किन्तु वचन दे कि किसी को दिखलाएगी नहीं वह पुस्तक। और किसी से कहेगी भी नहीं कि मैंने तुझे दी है।"

"अच्छा ! किसी से नहीं कहूँगी।"

पूरबी ने एक क्षण विचार करके कहा : "रेणु ! वह पुस्तक तू अपनी बाड़ी में मत ले जा। यहीं पढ़ ले। भला ?"

रेणु ने उत्सुकता से भरकर उत्तर दिया : "अच्छा यहीं पढ़ लूँगी, दीदी !"

तब पूरबी ने अपनी आलमारी का ताला खोलकर एक छोटी-सी पुस्तक रेणु के हाथ में दे दी। नाम था "उन्मुक्त अभिसार का रहस्य।"

रेणु उस को खोलकर उसमें लगे फोटो देखने लगी। पूरबी काम का बहाना करके वहाँ से खिसक गई।

पूरबी लौटकर आई तो रेणु मुँह लटकाए बैठी थी। पुस्तक एक ओर पड़ी थी। पूरबी ने पूछा : "पढ़ ली ?"

रेणु बोली : "तुम्हारा सिर पढ़ती, दीदी ! बड़ी बढ़िया पुस्तक दी है ना ! ! मैं नहीं पढ़ती ऐसी पुस्तक।"

"क्यों ?"

"बुरी-बुरी बातें लिखी हैं। गली में वह गुण्डा है ना ? रामेश्वर बसु। वह बकता रहता है ऐसी बातें।"

"तो क्या हो गया ?"

"कुछ नहीं हो गया ! ! तुम्हारी भी मत मारी गई है, दीदी ! भद्र लोग कहीं ऐसी बातें कहते-सुनते हैं। और भद्र लोग क्या ऐसे फोटो देखा करते हैं ?"

"क्या बात है फोटो में ?"

"निर्लज्जता। हत् तेरे की ! ऐसे भी कोई नंगा हुआ करता है ? और सबके सामने ! ! नहीं, दीदी ! इस पुस्तक को तुम माचिस दिखा दो।"

पूरबी ने पुस्तक उठाकर आलमारी में बन्द कर दी। फिर वह हँसकर बोली : "तू तो अपनी नानी की कहानी ही पढ़ा कर, रेणु ! किन्तु फिर कभी मेरा सिर मत खाइयो। मुझसे नहीं पूछियो कि ब्याह क्यों होता है।"

रेणु ने उसी समय पूछ लिया : "ब्याह क्यूँ होता है, दीदी !"

"अरी अभी क्या देखा था तूने ? अब भी नहीं समझी ?"

"तो क्या यही सब करने के लिए ब्याह होता है ! ऐसी-ऐसी बातें बकने के लिए ! !"

"और किसलिए होगा ब्याह ?"

"तब तो ब्याह बड़ी खराब बात है, दीदी ! अच्छा हुआ तुम विधवा हो गई। और अच्छा हुआ मैं मित्तिर महाशय के घर नहीं गई। हाय माँ ! मेरा तो जी बैठा जा रहा है।"

पूरबी मौन रह कर मुस्करा रही थी। रेणु ने कहा : "दीदी ! वह

पुस्तक एक बार मुझको दे दो। अभी लौटा जाऊँगी। तुम्हारे सिर की सौगन्ध।"

पूरवी बोली : "अभी तो कह रही थी कि माचिस दिखा दो।"

"एक बार बाबा को दिखाऊँगी वह पुस्तक। उनसे पूछूँगी कि मेरा ब्याह क्यों किया। क्या बाबा को यह सब ज्ञान है, दीदी! तब तो बाबा...

पूरबी ने रेणु का कान पकड़ कर मल दिया। फिर वह बोली : "मैं कहती थी ना कि तू मुझे घर से निकलवाएगी। खबरदार जो अपने बाबा से कुछ कहा!"

रेणु चुप हो गई। पूरवी ने पूछा : "रेणु! तेरी वयस कितनी है?"

रेणु ने उत्तर दिया : "मैं क्या जानूँ? बाबा से पूछ लेना।"

"तभी तो तू नानी की कहानियाँ पढ़ती है।"

"तो और क्या करूँ, दीदी!"

"कुएं में गिर जा, कलमुहीं! मेरा माथा मत खा।"

"तुम तो क्रोध करने लगी, दीदी!"

"और नहीं तो तुझको पुचकारूँ। बातों-बातों में वह पुस्तक मुझसे ले ली। और अब कह रही है कि बाबा से कहूँगी।"

"तुम्हारे सिर की सौगन्ध, दीदी! बाबा से नहीं कहूँगी। केवल बड़ी भाभी से पूछूँगी कि क्या वे भी ऐसी पुस्तकें पढ़ती हैं, ऐसी बातें बकती हैं, ऐसे काम...

पूरवी का पारा और भी चढ़ गया। वह चिल्लाकर बोली :

"रेणु! देख तूने यदि किसी से भी कुछ कहा तो मैं यह घर छोड़कर निकल जाऊंगी।"

रेणु काँप उठी। वह पूरवी के पाँव पकड़कर बोली : "नहीं, दीदी! किसी से भी नहीं कहूँगी। तुम यह घर छोड़कर मत जाना। फिर मैं अकेली रह जाऊँगी। और रो-रोकर मर जाऊँगी, दीदी! मुझसे क्या तुम्हारे सिवाय सीधे मुँह बोलता है कोई? तुम चली गई तो मेरा जी कैसे लगेगा?"

पूरवी नरम पड़ गई। वह रेणु का सिर सहलाने लगी। तब रेणु ने पूछा : "अच्छा, नहीं जाओगी ना, दीदी!"

पूरबी ने कह दिया : "नहीं जाऊँगी, रेणु ! और जाऊँगी तो तुझे साथ ले चलूँगी। कलकत्ते। चलेगी ना मेरे साथ ?"

"चलूँगी।"

: २ :

रेणु उपन्यास पढ़ती रही। पूरबी के पास बैठकर ताश भी खेलती रही। घरवालों ने उसकी हठ से हारकर मौन धारण कर लिया था। अब कोई उसे मित्तिर महाशय के घर जाने के लिए नहीं कहता था। मित्तिर महाशय भी अब उस ओर बहुत कम आते थे। रेणु ने सुना था कि उनके एक और ब्याह की बात चल रही है।

एक दिन पूरबी ने पूछा : "रेणु ! तू मुखर्जी-बाड़ी को पहिचानती है ?"

रेणु ने कहा : "हां। वही तो जो बड़े पोखर के पास है ? लाल रंग की ?"

"हाँ, वही। और समर दादा को भी जानती है ना ?"

"हाँ, जानती हूँ। वे ही तो जो कलकत्ते में रहते हैं। बाबा से मिलने आया करते हैं। कल भी आए थे।"

"वे आज भी आएँगे तुम्हारे घर।"

"तुम उन्हें कैसे जानती हो, दीदी !"

"जानती हूं। जा यह चिट्ठी ले जा। समर दादा के हाथ में देकर आइयो। चुप-चुप। किसी के सामने मत दीजो। और कोई पूछे कि किस की चिट्ठी है तो मेरा नाम मत लीजो।"

"तो किस का नाम लूँ ?"

"मित्तिर महाशय का !! कलमुँही कहीं की !! जब देखो तब प्रश्न पूछती रहती है !"

"तुम तो, दीदी ! झूठमूठ क्रोध करती हो। कोई पूछ लेगा तो मैं क्या कहूँगी भला ?"

"अच्छा समर दादा अकेले नहीं हों तो लौटाकर ले आइयो मेरी चिट्ठी।"

रेणु ने पूरबी की चिट्ठी को उलट-पलट कर देखा। लिफाफा कस कर

बन्द किया गया था। और दोनों ओर से कोरा था। रेणु ने पूछा : "दीदी, दीदी ! तुम कहो तो मैं भी पढ़ लूँ यह चिट्ठी।"

पूरबी को ताव आ गया। वह बोली : "कलमुँही का कचूमर निकाल दूँगी ! ला दे मेरी चिट्ठी !!"

"क्यों, दीदी ! ऐसा क्या है इसके भीतर ?"

"साँप-छछूँदर ! और नहीं तो !!"

रेणु चिट्ठी लेकर चली गई। गरमी की दोपहरी में कोई भी नहीं था गलियारे में। और चार कदम पर ही तो थी समर मुखर्जी की बाड़ी। रेणु जल्दी-जल्दी पाँव उठाने लगी।

मन में कौतुहल भी था। क्या लिखा है दीदी ने ? जी चाहा खोलकर पढ़ ले। किन्तु लिफाफा तो फट जायेगा। और समर दादा दीदी से कह देंगे। और दीदी बहुत बिगड़ेंगी। शायद अपने घर में ही न घुसने दें उसके उपरान्त। तब वह ताश किस के साथ खेलेगी ? गप्पें किसके साथ मारेगी ? और उपन्यास किस से उधार लेगी ? नहीं, नहीं। चिट्ठी वह नहीं पढ़ेगी।

समर अपने कमरे में अकेला बैठा टेबिल लैम्प के साथ खुटपुट कर रहा था। उसने रेणु को भीतर आते नहीं देखा। और रेणु वह चिट्ठी उसके पास फेंककर भाग आई। उल्टे पाँव। समर ने उसको लौटते देखकर पुकारा। किन्तु रुकी नहीं रेणु।

समर मुखर्जी आए हफ्ते अपने घर आता था। शनिवार की साँझ को। और आए रविवार पूरबी उसके पास चिट्ठी भेजती थी। रेणु के हाथ। रेणु की समझ में कुछ नहीं आता था। किन्तु पूरबी से कुछ पूछ लेने का साहस नहीं हुआ उसको। मन में भय होता था। दीदी रूठ गई तो ?

फिर पूजा की छुट्टियाँ आईं। समर मुखर्जी आठ-दस दिन तक अपने घर पर ही रहा। रेणु ने लक्ष्य किया कि पूरबी का चित्त बहुत चंचल है। अब वह रेणु के साथ हँस-हँसकर नहीं बोलती थी। सीधे मुँह बात भी नहीं करती थी। जैसे रेणु से रुष्ट हो गई हो। रेणु की कुछ भी समझ में नहीं आया। पूरबी ने पहले तो कभी उसके साथ ऐसा बर्ताव नहीं किया था।

पूजा चली गई। पूरबी फिर वैसी ही हो गई। और अगली बार समर

आया तो एक चिट्ठी रेणु के हाथ में देकर वह बोली :

"जा समर दादा को दे आ।"

रेणु चिट्ठी ले चली। किन्तु अब की बार वह अपना कौतुहल नहीं रोक पाई। उसने समर से पूछ लिया : "दीदी रोज-रोज आपको क्या लिखतीं हैं, दादा!"

समर हँसने लगा। फिर बोला : "अपनी दीदी से ही पूछ लेना, रेणु! और तू क्या किसी को भी चिट्ठी नहीं लिखती?"

"मैं किस को लिखूँ?"

"मुझे लिख दिया कर।"

"आपको क्या लिखूँ?"

"क्या लिखा जाता है?"

"मैं क्या जानूँ।"

"तो जान जाए तब लिख दीजो। लिखेगी ना?"

रेणु ने उत्तर नहीं दिया। वह चली आई। अगले दिन समर भी चला गया। किन्तु रेणु पूरबी के पास पहुँची तो वह बोली : "क्यूँ री, कलमुँही! कल समर दादा से क्या कह रही थी?"

रेणु चकित रह गई। उसने पूछा : "तुमको कैसे पता चला, दीदी!"

"समर दादा ने मुझे सब बतला दिया।"

"वे तुम को कहाँ मिल गए?"

"वाह, मुझसे मिलने के लिए ही तो वे कलकत्ते से आते हैं।"

"क्यों?"

"मुझसे परीत करते हैं वे।"

"परीत क्या होती है?"

"तू उपन्यास पढ़ती है, रेणु! और मुझसे पूछती है कि परीत क्या होती है!!"

"बतला दो ना, दीदी! परीत क्या होती है?"

"उस दिन वह पुस्तक पढ़ी थी ना तूने? याद है?"

"कौन सी पुस्तक? वही जिसमें वे बुरी-बुरी बातें लिखी थीं?"

"हाँ, वही !"

"तो...

रेणु मुँह बाए खड़ी रह गई। पूरबी ने कहा : "समर दादा और मैं मिलते हैं तो वही सब करते हैं जो उस पुस्तक में लिखा है।"

रेणु ने कहा : "तब तो तुम बहुत बुरी हो, दीदी !"

"मैंने कब कहा कि मैं अच्छी हूँ ? फिर न आना मेरे पास !"

"आऊँगी।"

"मैं यहाँ रहूँगी ही नहीं।"

"तो कहाँ चली जाओगी ?"

"कलकत्ते।"

"कब ?"

"आज ही।"

"तो मैं भी चलूँगी तुम्हारे साथ।"

"चलेगी ?"

"जरूर चलूँगी।"

"तो किसी से कहियो मत। नहीं तो न मैं जा सकूँगी, और न तू ही।"

"नहीं कहूँगी।"

"रात को आ जाइयो मेरे पास। साढ़े आठ बजे। चुप-चाप। किसी को कानों-कान खबर न हो।"

"आ जाऊँगी।"

"और देख। तेरा गहना है ना ? वही जो मिसिर महाशय ने दिया था ?"

"वह तो वे ले गए। कई महीने पहिले।"

"तब तू मेरे साथ जाकर क्या करेगी ?"

"क्यूँ, दीदी !"

"कलकत्ते में गहना पहिनना पड़ता है सब को।"

"तुम्हारे पास तो गहना नहीं है, दीदी ! तुम क्या पहिनोगी ?

"मेरे लिए समर दादा गहना लाएँगे। स्टेशन पर।"

"तो मैं...

"अपनी भाभी का गहना ले आइयो। कलकत्ते से लौटकर लौटा दीजो।"

"भाभी तो नहीं देंगी अपना गहना।"

"तू उनसे माँगेगी तो वे नहीं देंगी। किन्तु तू माँगियो मत। वैसे ही ले आइयो।"

"यह तो चोरी करने के लिए कह रही हो, दीदी ! छि. छि: ! !"

"अच्छा ! तो फिर तू अपने घर में ही रह। क्या करेगी कलकत्ते चलकर ?"

"तुम कब लौटोगी, दीदी !"

"अब कौन जाने ? शायद कभी नहीं लौटूं।"

रेणु रोने लगी। पूरबी ने पूछा : "क्यों रो रही है, कलमुँही !"

रेणु ने उत्तर दिया : "तुम नहीं आओगी तो मैं किसके सहारे जीऊँगी, दीदी !"

"मित्तिर महाशय के घर चली जाइयो ! क्यों ? जाएगी न ?"

रेणु फिर रोने लगी। पूरबी ने कहा : "दीदी पर ऐसी जान देती है तो साथ क्यों नहीं चली चलती ?"

रेणु बोली : "तो चली चलूँगी।"

"गहना लाएगी ?"

"ले आऊँगी।"

रात के साढ़े आठ बजे रेणु भाभी का गहना एक पोटली में बाँधकर पूरबी के पास आ पहुँची। पूरबी तैयार बैठी थी। रेणु की पोटली उसने अपनी गठरी में बाँध ली। फिर वे दोनों घर के पिछवाड़े से निकल पड़ीं। गली में अँधेरा था। किसी ने उनको देखा नहीं।

गली के मोड़ पर एक रिक्शा वाला खड़ा था। पूरबी को देखते ही उसने उन दोनों को रिक्शा में बैठा लिया। और रिक्शा का परदा नीचा कर दिया। और फिर रिक्शा चल पड़ी। न जाने किस ओर। न रेणु ने कुछ पूछा। न पूरबी ने ही कुछ बतलाया।

स्टेशन पर जाकर वे दोनों गाड़ी पर सवार हो गईं। गाड़ी उसी समय

आई थी। और पांच-दस मिनट रुककर गाड़ी चल दी। तब पूरबी ने सुख की लम्बी साँस ली। रेणु खिड़की में से बाहर की ओर देख रही थी। उसे बहुत अच्छी लगी रेल-गाड़ी। पहिले कभी गाड़ी में नहीं बैठी थी वह। नाम ही सुना था रेल-गाड़ी का। यही कि रेल ऐसी होती है, वैसी होती है, यहाँ जाती है, वहाँ जाती है।

अगले स्टेशन पर समर खिड़की के पास आ खड़ा हुआ। खाने का सामान लेकर। नरम पाक के सन्देश। गरम-गरम सिंघाड़े। और मिट्टी के सकोरों में चाय। रेणु को बहुत अच्छा लगा सब। उसको भूख सता रही थी। खा-पीकर वह फिर खिड़की के बाहर झाँकने लगी। पूरबी से एक भी प्रश्न नहीं पूछा रेणु ने। पूरबी के पास रहकर उसके मन में किसी प्रकार की आशंका ही नहीं रहती थी। और फिर वह पूरबी से डरती भी थी। दीदी से कुछ पूछा और दीदी ने डाँट दिया तो...

फिर भी अगले स्टेशन पर रेणु ने पूछ ही लिया : "समर दादा नहीं आए, दीदी!"

पूरबी बोली : "आए तो थे पिछले स्टेशन पर।"

"अब की बार क्यों नहीं आए?"

"अगले स्टेशन पर आएँगे।"

"अगला स्टेशन कौन-सा है?"

"रानाघाट।"

"और कलकत्ता?"

"वहाँ अभी नहीं जाएँगे।"

"क्यों?"

"कह तो दिया नहीं जाएँगे।" रेणु चुप हो गई। पूरबी उठकर बाथ-रूम में चली गई। लौटी तो रेणु ने पूछा : "कहाँ गई थीं, दीदी!"

पूरबी ने उत्तर दिया : "जा तू भी देख आ।"

रेणु भीतर गई। और दूसरे ही क्षण लौटकर बोली : "अरे दीदी! वहाँ तो नल लगा है। और नल में पानी भी आता है!!"

पूरबी हँसने लगी : "और नहीं तो क्या? फस्ट क्लास का किराया जो

दिया है।"

"फस्ट क्लास माने ?"

"थर्ड क्लास देखेगी तो समझ जाएगी।"

"थर्ड क्लास कैसा होता है ?"

"उसमें बहुत सारे लोग बैठते हैं। वहाँ ऐसा एकान्त नहीं होता।"

"तब तो, दीदी ! उसी में ना बैठते ? लोगों से बातें करते।"

"तेरी बातों के डर से ही तो फस्ट क्लास में आए हैं।"

रेणु की समझ में नहीं आई वह बात। बातों का डर ? डर कैसा ? डर क्यों ? किसका डर ?

रानाघाट आ गया। रेणु को साथ लेकर पूरबी स्टेशन से बाहर निकल आई। एक रिक्शा वाले ने उनको भीतर बैठा कर फिर परदा डाल दिया। रेणु को अच्छा नहीं लगा वह परदा। नया स्थान देखना चाहती थी वह। किन्तु पूरबी ने मना कर दिया। तब रेणु ने पूछा : "समर दादा कहाँ गए, दीदी ! तुम तो कहती थीं कि रानाघाट के स्टेशन पर मिलेंगे।"

पूरबी ने उत्तर दिया : "आगे की रिक्शा में बैठे हैं।"

कुछ क्षण उपरान्त उनकी रिक्शा रुक गई। वे दोनों नीचे उतर आईं। समर पहिले ही वहाँ खड़ा था। रिक्शा वाले को किराया देकर वह उन दोनों को एक बाड़ी में ले गया। दो तल्ले के एक कमरे पर। रेणु को नींद आ रही थी। थोड़ी देर पीछे वह सो गई।

दूसरा परिच्छेद

वह बाड़ी रानाघाट नगर के बाहर थी। रेणु रानाघाट देखना चाहती थी। किन्तु पूरबी ने नहीं जाने दिया। कह दिया कि किसी दिन अवकाश होगा तो वह स्वयं रेणु को साथ लेकर रानाघाट दिखा लाएगी। रेणु की समझ में वह बात कम आई। अवकाश ही तो था पूरबी के पास। वह सारा दिन सोती ही रहती थी। खाना भी बाहर से आता था। समर साँझ के पहिले नहीं आता था। और दिन निकलने के पूर्व ही चला जाता था।

रेणु का जी ऊब उठा। अपने घर में तो जब उसका जी ऊब उठता था तब वह पूरबी के पास जा बैठती थी। किन्तु यहाँ तो चौबीस घण्टे पूरबी के पास ही रहती थी वह। कोई अपूर्वता नहीं रही पूरबी में। वह बाहर जाकर जी बहलाना चाहती थी। किन्तु पूरबी ने मना कर दिया था। वह तो रेणु को खिड़की के पास भी नहीं खड़ी होने देती थी। रेणु को पूरबी पर क्रोध आने लगा।

क्रोध नहीं आता? रात-रात भर वह न जाने समर दादा के साथ क्या-क्या करती रहती थी। दोनों को लाज भी नहीं आती थी। समर रेणु के सामने ही पूरबी का गाल चूम लेता था। और बुरी-बुरी बातें बकने लग जाता था। वैसी ही बातें जो गली का रामेश्वर बसु बका करता। वैसी ही बातें जैसी रेणु ने उस पुस्तक में पढ़ी थीं। रेणु को वह सब पसन्द नहीं आता था। वह रात-भर उन दोनों की ओर से मुँह फेर कर अपने बिस्तर पर पड़ी रहती थी। और रो-रोकर सो जाती थी।

फिर एक दिन समर और पूरबी में झगड़ा हो गया। पूरबी समर की अनेक सेवा किया करती थी। उस दिन उसने पूछ लिया : "कलकत्ते कब

चलोगे, समर दा!"

समर ने उत्तर दिया : "कलकत्ते में बासे का बन्दोबस्त नहीं हुआ अभी तक।"

"वे गहने क्या तुमने बेच डाले?"

"हाँ, बेच दिए।"

"फिर भी बन्दोबस्त क्यों नहीं हो सका?"

"कितने रुपये के थे गहने? हजार रुपये में कैसे कोई बाड़ी मिल जाती? पाँच हजार रुपये तो सलामी ही लगती है।"

"वे रुपये हैं कहाँ?"

"मेरे पास हैं।"

"मुझे दे दो।"

"तुम क्या करोगी?"

"सँभाल कर रखूँगी।"

"और मैं क्या खो दूँगा?"

"सो मैं नहीं कहती। मेरे रुपये मेरे पास ही रहने चाहिएँ।"

"वे रुपये तुम्हारे कैसे हो गए?"

"तो किसके हैं?"

"किसी के भी नहीं। चोरी का माल उसी का होता है जिसके हाथ लग जाए।"

"बड़े बेईमान हो?"

"बेईमान नहीं होता तो तेरे जैसी हरजाई से क्यों पाला पड़ता?"

"मुझसे जी भर गया तुम्हारा?"

"भर गया।"

"तो अब मेरा क्या होगा?"

"वही होगा जो होता है।"

"मैं भी तो सुनूँ।"

"दोस्तों का दिल बहलेगा।"

"और मैं पुलिस में चली जाऊँगी।"

समर हँसने लगा। फिर बोला : "डर गईं, डीअर !"

पूरबी ने कहा : "डरूँगी नहीं ? तुम बातें कैसी कह रहे हो ?"

"ठट्ठा कर रहा था।"

"किसी और के साथ करना ऐसा ठट्ठा।"

"तुम्हारे साथ क्यों नहीं ?"

"बस मेरे साथ नहीं।"

"क्यों ? तुम क्या मेरी माँ हो ?"

पूरबी को क्रोध आ गया। वह बोली : "हाँ, मैं तुम्हारी माँ हूँ।"

समर ने पूरबी के मुँह पर तमाचा मार दिया। पूरबी ने उबलकर कहा : "बदमाश कहीं के ! !"

फिर तो समर पूरबी को पीटने लगा। यदि रेणु बीच में न पड़ी होती तो उस दिन पूरबी की हड्डी-पसली चूर हो जाती। समर उसी समय बाड़ी छोड़कर चला गया। आधी रात के समय। और पूरबी सारी रात रोती रही। रेणु ने कहा :

"अपने घर लौट चलो, दीदी !"

पूरबी बोली : "वह घर तो सदा के लिए पराया हो गया, रेणु ! अब मैं वहाँ नहीं जा सकती।"

"मैं तो जाऊँगी।"

"तू भी नहीं जा सकती।"

"क्यों ?"

"भद्र बाड़ी से भागकर बहू-बेटी वापिस नहीं जातीं, रेणु !"

"तो यहाँ कैसे चलेगा ?"

"जैसे भी चले, चलाना होगा।"

"एक चिट्ठी लिखकर बाबा को बुला लूँ, दीदी !"

पूरबी सहम उठी। वह रेणु को धमकाकर बोली : "खबरदार जो ऐसा विचार भी किया !"

रेणु ने विरोध किया : "किन्तु यहाँ तो समर दा तुमको मार डालेंगे। मुझे भी मार डालेंगे।"

"नहीं, मारेंगे नहीं। मैं उनको मना लूँगी।"

अगले दिन समर रात गए लौटा। उसके हाथ में एक बोतल थी। उसे खोला तो सारा कमरा दुर्गन्ध से भर गया। नाक पर कपड़ा लगा लिया रेणु ने। किन्तु समर उस बोतल में भरा पेय गिलास में ढालकर पीने लगा। पूरबी एक ओर बैठी थी। चुपचाप। पथराई हुई-सी। समर एक गिलास पीकर दूसरा भरने लगा। तब पूरबी ने कहा : "मेरे सिर की सौगन्ध जो तुम मद पीओ!"

समर ने हँसकर कहा : "क्यों नहीं पीऊँ? मरद-बच्चा मद नहीं पीएगा तो क्या तुम जैसी लड़कियाँ पीएँगी?"

पूरबी ने फिर उसको नहीं टोका। मद पीकर समर मतवाला हो गया। और बत्ती बुझने के पहले ही वह पूरबी को छेड़ने लगा। पूरबी ने प्रतिवाद करते हुए कहा : "यह क्या कर रहे हो? देखते नहीं, रेणु देख रही है?"

समर ने हँसकर कहा : "देखने दो। वह भी सब सीख जाएगी। एक दिन उसे भी तो यह सब करना है। ऐसे कितने दिन तक मुफ्त की रोटी खाए जाएगी। और कौन खिलाएगा?"

उस सारी रात समर ने घर को सिर पर उठाए रक्खा। पूरबी को बहुत तंग किया उसने। और बत्ती भी नहीं बुझाने दी। रेणु मुँह फेरकर अपने बिस्तर पर पड़ी रही। रो-रोकर आँखें लाल कर लीं उसने। किन्तु समर को उस पर दया नहीं आई। पूरबी ने भी हारकर आत्मसमर्पण कर दिया।

तदनन्तर समर नित्यप्रति पीने लगा। और नित्यप्रति होने लगा वह बीभत्स काण्ड। फिर पूरबी भी मद पीने लगी। नशे में चूर होकर नंगी नाचती थी वह। एक रात समर ने रेणु से कहा : "रेणु! तू भी मद चख कर देख ले। माँ की सौगन्ध मजा आ जाएगा।"

रेणु ने जुगुप्सा से अपना मुख फेर लिया। उस रात रेणु सोई हुई थी। कमरे में अन्धकार था। सहसा उसको ऐसा लगा जैसे कोई उसकी छाती पर चढ़ बैठा हो। रेणु की आँख खुल गई। बहुत समीप से मद की दुर्गन्ध आ रही थी। रेणु समझ गई कि समर है। वह बोली : "यह क्या, समर दा!"

समर ने अपने हाथ से उसका मुँह बन्द कर दिया। कहा कुछ नहीं। रेणु तिलमिला उठी। और उसने शरीर का सारा बल लगा कर करवट

बदल डाली। समर नीचे गिर पड़ा। धमाके के साथ। पूरबी जाग उठी। और उसने कमरे की बत्ती जला दी।

फिर तो उन दोनों में खूब झगड़ा हुआ। समर ने पूरबी को खूब पीटा। पूरबी ने भी जी भर कर गालियाँ दीं उसे। और रेणु को भी गालियाँ दीं। रेणु की समझ में नहीं आया कि उसका क्या अपराध है। वह रोने लगी। तब पूरबी भी रो पड़ी। किन्तु समर बिस्तर पर पड़ कर खर्राटे भर रहा था।

अगली सांझ पूरबी ने रंगीन साड़ी नहीं पहनी। न सिर पर जूड़ा बाँधा। न होठों पर लाली लगाई। और न आँखों में काजल डाला। समर आया तो पूरबी ने उससे बात ही नहीं की। रेणु डरी बैठी थी। एक ओर। बात कहते ही पूरबी काटने को दौड़ती थी। समर ने रेणु से पूछा :

"बात क्या है, रेणु!"

रेणु बोली : "दीदी को बहुत क्रोध आ गया है।"

"किन्तु क्यों?"

पूरबी चिल्लाई : "किन्तु क्यों!! जैसे दूध-पीते बच्चे है! कुछ जानते ही नहीं।"

समर ने पूरबी से पूछा :

"मैंने क्या कर दिया, डीअर!"

"रात को रेणु के बिस्तर पर क्यों गए थे तुम?"

"अरे राम-राम!! मैं रेणु के बिस्तर पर गया था!!! मैं क्यों जाने लगा वहाँ?"

समर ने अपने दोनों कान पकड़ कर दाँतों तले जीभ दबा ली। फिर वह पूरबी को मनाने लगा। वह नहीं हँसी तो समर ने गुदगुदा कर हँसा दिया उसे। पूरबी ने फिर अपना शृंगार कर लिया। और फिर वे दोनों मद पीकर वही सब करने लगे जो रोज करते थे।

अब तो समर दिन के समय भी आने लगा। कभी-कभी। दिन में वह मद नहीं पीता था। और मारपीट भी नहीं करता था। वे तीनों एक साथ बैठ कर ताश खेलते थे। गप्पें हाँकते थे। रेणु को वह सब बड़ा अच्छा लगता था। वह सोचती थी कि रात के समय समर दा पर न जाने कैसा

भूत-सा चढ़ जाता है। एक दिन रेणु ने पूरबी से कह दिया : "दीदी ! समर दा से कह दो रात को यहाँ न आया करें। दिन में ही आएं तो अच्छा है।"

"क्यों ?"

"रात को वे बुरे आदमी बन जाते हैं।"

"धुत् पगली ! बुरे आदमी नहीं बनते समर दा। रसिया बन जाते हैं।"

"फिर भी, दीदी ! उनसे कह दो कि रात के समय नहीं आएँ।"

"मर कलमुँही ! रात को नही आएँ तो कब आएँ ? रात का ही तो सारा खेल-तमाशा है।"

"मुझको पसन्द नहीं।"

"तो अभी क्या देर हुई है, मुन्नी ! तू भी समझ जाएगी। सब समझ जाएगी। तेरे दिन तो आने दे। अभी तो तेरे दूध के दाँत भी नहीं टूटे।"

अब पूरबी बहुत बनाव-सिंगार करती थी। हर घड़ी दर्पण में मुख देखती रहती थी अपना। रंगीन साड़ियाँ पहनती थी वह। नित नई बदल-बदल कर। रेणु भी कई बार उसके कहने से सिंगार कर लेती थी। मन मार-कर। समर घर में होता तो रेणु को देख कर उसके रूप की प्रशंसा करने लगता था। किसी कविता के बोल कह-कह कर। पूरबी का मुँह फूल जाता था। और वह साँझ तक रेणु से नहीं बोलती थी। रेणु की समझ में नहीं आता था कि उसका क्या दोष है। फिर भी वह रात होते-होते पूरबी को मना लेती थी।

कई सप्ताह उपरान्त एक दिन साँझ के समय समर वहाँ आया तो उस के साथ एक पंजाबी भी था। लुँगी बाँधे। सिर पर मुँडासा मारे। बड़ी-बड़ी मूँछें-दाढ़ी वाला पंजाबी। टूटी-फूटी बंगला में बातें कर रहा था वह। बात-बात में अट्टहास कर उठता था।

समर ने पूरबी को बतलाया कि बूटासिंह कलकत्ते में ठेकेदारी करता है। उसकी कई बसें भी चलती हैं वहाँ। बहुत बड़ा रुपया है बूटासिंह के पास। और दिल उससे भी बड़ा। बूटासिंह कई डिब्बे अपने साथ लाया था। पूरबी उनको खोलकर देखने लगी। साड़ियाँ थीं। मिठाई थी। मेवे थे।

रेणु ने भी आँख की कोर से बूटासिंह को देखा। वयस में वह समर से

बड़ा था। किन्तु रंग का साँवला। एक प्रकार से काला-काला। वह वहाँ आते ही रेणु की ओर घूरने लगा। वैसे ही जैसे मित्तिर महाशय ने घूरा था उस दिन। रेणु आपादमस्तक सिहर उठी। और कातर दृष्टि से पूरबी की ओर देखने लगी।

किन्तु पूरबी को न जाने आज क्या हो गया था। पंजाबी को धमकाया नहीं उसने। वह उल्टा हँसने लगी। समर भी हँस रहा था। रेणु वहाँ से उठकर अपने बिस्तर पर जा बैठी। पंजाबी भी उसके पास आ बैठा। रेणु सहमकर सिकुड़ गई। पंजाबी उसकी ओर सरक कर फैल गया।

समर ने कहा : "बस करो, बूटासिंह ! एक ही दिन में बुलबुल नहीं चहकती।"

बूटासिंह बोला : "क्या करूँ, यार ! दिल भी मानता हो।"

"तो बुलबुल पसंद आ गई ?"

"लाखों में एक है।"

"फिर तो नहीं कहोगे कि दाम ज्यादा बोल दिए ?"

बूटासिंह हँसने लगा। और फिर वह समर के साथ बाहर चला गया। रेणु जैसे आसमान से गिरी हो। पूरबी की ओर देखने लगी वह। भीत मृगी-सी। पूरबी ने उसकी आँखों से आँखें नहीं मिलाई। वह उठकर खिड़की के पास जा खड़ी हुई। रेणु रोने लगी। पूरबी ने पुचकारा नहीं उसको। रेणु रो-रोकर सो गई। उस साँझ भोजन नहीं किया उसने।

अब तो बूटासिंह बार-बार आने लगा। कभी समर के साथ। कभी अकेला। पूरबी उसकी खूब आव-भगत करती थी। वह भी नित नई वस्तुएँ लाता था। कभी कोई साड़ी। कभी बाघबाजार के रसगुल्ले। कभी बढ़िया-बढ़िया फल। और भाँति-भाँति के फूल और मालायें भी। पूरबी उसकी लाई हुई साड़ी पहन लेती थी। मिठाई खाती थी। फल भी। फूलों से अपना जूड़ा सजाती थी। रेणु के देखते-देखते।

न जाने क्या होता जा रहा था पूरबी को। अब वह भी वे बुरी-बुरी बातें बकती थी। दिन-भर मद पीती रहती थी। रात को बत्ती बुझाए बिना ही समर के साथ निर्लज्जतापूर्ण व्यवहार करने लगती थी। रेणु का वहाँ

रहना दूभर हो गया। किन्तु निकल भागने की राह वह नहीं निकाल पाई। पूरबी उसे खिड़की के पास तक नहीं फटकने देती थी।

अन्ततः एक दिन बूटासिंह ने कहा : "मैं कल देश जा रहा हूँ। बुल-बुल को तैयार कर देना, पूरबी!"

पूरबी ने उत्तर दिया : "तैयार मिलेगी। टैक्सी लेकर आना।"

बूटासिंह चला गया। समर वहाँ नहीं था उस दिन। रेणु ने पूरबी से ही कहा : "दीदी! मैं इस पंजाबी के साथ नहीं जाऊँगी।"

पूरबी ने पूछा : "क्यों नहीं जाएगी? इसने पाँच हज़ार रुपये दिये हैं तेरे।"

"मैंने तो रुपये नहीं लिए, दीदी! मैं-क्यों जाऊँ?"

"तो तू इतने दिन से जो रोटी यहाँ निगल रही थी वह क्या तेरा बाप दे गया था?"

"मुझे मेरे घर भेज दो, दीदी!"

"मिसिर महाशय के पास नहीं?"

"वहीं भेज दो।"

"डर नहीं लगेगा।"

"इस पंजाबी को देखकर तो मेरे प्राण सूखते हैं, दीदी!"

"अब तो तुझे इसी के साथ जाना होगा, रेणु! और कोई रास्ता नहीं रहा। तेरे घर वालों को तेरा पता चल गया तो वे तेरे गले में कलसी बांध कर गंगा में डुबा देंगे तुझे।"

रेणु की समझ में नहीं आई वह बात। उसका मन कहता था कि उसके बाबा उसे गंगा में नहीं डुबाएँगे। भाई भी नहीं। भाभियाँ भी नहीं। वे उसे डाँटते-फटकारते थे। अब की बार शायद मारें-पीटें भी। किन्तु उनके पास जाकर वह बूटासिंह से बच जायेगी। और...और पूरबी से भी बच जायेगी!! हाँ, अब वह पूरबी से भी बचना चाहती थी।

रात के समय समर और पूरबी शीघ्र ही सो गए। दोनों ने बहुत ज्यादा पी ली थी। बत्ती जलती रही और रेणु ने समर की जेब से पैन निकालकर एक चिट्ठी लिख डाली। बाबा के नाम। छोटी-सी चिट्ठी थी।

मोटी-मोटी बातें बताने वाली।

फिर वह बत्ती बुझा कर खिड़की के पास जा खड़ी हुई। किसी के हाथ वह चिट्ठी घर भेजना चाहती थी। सारी रात खड़ी रही रेणु। पूरवी और समर सो रहे थे। रेणु रो रही थी। रह-रह कर बूटासिंह का विकराल चेहरा उसकी आँखों के सामने घूम जाता था।

रात के पिछले पहर में एक लड़का बाड़ी के नीचे से निकला। रेणु खांस उठी। लड़के ने आँखें उठाकर ऊपर देखा। रेणु ने वह चिट्ठी उसकी ओर फैंक कर हाथ जोड़ लिए। सामने सड़क की बत्ती का प्रकाश उस ओर आ रहा था। लड़के ने चिट्ठी उठाकर पढ़ ली। और फिर वह हाथ के संकेत से रेणु को सान्त्वना देकर चला गया। जल्दी-जल्दी पाँव उठाता हुआ।

और अगले दिन बूटासिंह के आने से पूर्व रेणु के बाबा और बड़े भैया वहाँ आ पहुँचे। पहिली रात वाले लड़के के साथ। समर कहीं बाहर गया हुआ था। पूरवी पीठ मोड़ कर कोने में खड़ी हो गई। और रेणु को साथ लेकर उसके बाबा तथा भैया उसी क्षण उस बाड़ी के बाहर हो गए। रेणु का मानस आनन्द से विभोर हुआ जा रहा था।

: २ :

रेणु का जी चाहता था कि बाबा से लिपट कर रोए। खूब रोए। फफक-फफक कर रोए। कितने दिन के आँसू अँटे थे अन्तर में। रेणु अपनी भिड़ास निकालने के लिए तिलमिला रही थी। किन्तु बाबा का मुख देखकर उनको छूने का भी साहस नहीं कर सकी वह। एक शब्द भी नहीं बोल पाई रेणु। सिर झुकाकर उनके साथ रिक्शा पर बैठ गई। सिर झुकाकर ही गाड़ी के डिब्बे में सवार हो गई।

बाबा एक ओर बैठे थे। शान्त, गम्भीर, मौन। भैया दूसरी ओर। वैसे ही गम्भीर और शान्त। किन्तु उस शान्ति के भीतर मानो कोटि-कोटि क्रोध-ज्वाल लपलपा रही थीं। उस गाम्भीर्य के भीतर मानो गरल का अथाह, अपरिमेय सागर सिमटा हुआ था। और वह मौन ? वाग्बाण की नाईं विष-विदिग्ध था वह मौन। रेणु का साहस नहीं हुआ कि उन दोनों में से किसी के साथ भी कोई बात छेड़े।

रेणु को आश्चर्य भी हो रहा था। यह न जाने इन लोगों को हो क्या गया था। ये लोग बोले क्यों नहीं ? और उसे भय क्यों लग रहा था कि ये बोले तो वह विद्ध हो जाएगी ? पहिले तो ये लोग ऐसे नहीं थे। क्रोध आता था तो भी बोलते थे। बक-झक कर के इनके मन का मुटाव उतर जाता था। किन्तु आज न जाने इन लोगों को क्या हो गया था।

कई घण्टे बैठी रही वह रेलगाड़ी में। बाबा भी बैठे रहे। भैया भी। न उन लोगों ने एक बूँद चाय पीई न रेणु को पीने के लिए पूछा। न उन्होंने एक सन्देश अथवा सिंघाड़ा खाया, न रेणु को ही खरीद कर खिलाया। प्यास भी लगी थी। किन्तु उसे उन दोनों से कुछ माँगने का साहस ही नहीं हुआ। भूखी-प्यासी ही बैठी रही रेणु। स्टेशन-स्टेशन पर बिकते हुए जलपान की ओर टुकर-टुकर देखती हुई। उसके पास तो एक पैसा भी नहीं था। और पैसा होता तो भी क्या बाबा और भैया की ओर देख लेने के उपरान्त वह कुछ खरीद पाती ?

सांझ को वे तीनों एक बड़े-से स्टेशन पर उतर गए। हाय मां ! इतने लोगों की भीड़ !! इतने लोग एक साथ इसके पहिले रेणु ने कभी नहीं देखे थे। दुर्गा-पूजा पर भी नहीं। यहाँ तो मानो लोगों का दरियाव बह रहा था। कहाँ जा रहे थे ये सब लोग ?

बाबा रेणु के आगे-आगे चल रहे थे। भैया पीछे-पीछे। रेणु का जी चाहा पूछ ले कि वे लोग कहाँ पहुँच गए हैं। रेल गाड़ी में बैठी तो उसने सोचा था कि वे अपने घर जा रहे हैं। भाभियों के पास। सखी-सहेलियों के पास। किन्तु यह तो कहीं और ही आ पहुँचे। कौन-सा स्थान है यह ? किन्तु रेणु का साहस नहीं हुआ कि बाबा से अथवा भैया से उस नगर का नाम पूछ ले।

स्टेशन से निकल कर वे तीनों ट्राम पर सवार हो गए। रेणु तो इस को भी रेल-गाड़ी ही समझी। बस छोटी रेलगाड़ी थी यह। उतनी लम्बी नहीं, जिसमें बैठकर वह घर से रानाघाट और रानाघाट से यहाँ आई थी। फिर मन में संशय भी उठा। उस रेल-गाड़ी में तो धुआँ निकलता था। इस में तो नहीं निकलता। तो क्या यह...रेणु का जी चाहा बाबा से पूछ ले,

भया से पूछ ले। किन्तु उसको साहस नहीं हुआ।

और कुछ क्षण उपरान्त वह अपने प्रश्न ही भूल गई। ट्राम वेग के साथ भागी जा रही थी। ओ मां! कितनी दूकानें हैं दोनों ओर! कितनी बत्तियाँ जल रही हैं!! एक साथ!!! और मकानों के ऊपर कहीं-कहीं पर ये लाल-नीली बत्तियाँ कैसी हैं? आँख-मिचौनी-सी करती हुई बत्तियां? एक बत्ती को देख कर रेणु ने पढ़ लिया: "ब्रुक बॉण्ड चाय, बढ़िया चाय।" यह कौन-सी चाय है? वे क्या घर में यही चाय पीते हैं? रेणु का जी चाहा बाबा से पूछ ले, भैया से पूछ ले। किन्तु उसका साहस नहीं हुआ।

पारुल दीदी की ससुराल में पहुँच कर ही रेणु समझ पाई कि वह कलकत्ते में है। पारुल उसके मामा की बड़ी बेटी थी। माँ के मरने के पूर्व रेणु मामा के घर जाया करती थी। बरस में एक बार। तब उसने पारुल को देखा था। बयस में उससे बहुत बड़ी थी पारुल दीदी। उसकी बड़ी भाभी जितनी बड़ी। वैसी ही सुन्दर भी। रेणु ने सुन रक्खा था कि पारुल की ससुराल कलकत्ते में है और पारुल के स्वामी बड़े आदमी हैं।

पारुल को देखकर बड़ी प्रसन्न हुई रेणु। वह उसको कम ही जानती थी। मामा के घर में दो-एक बार मिलने का ही संयोग हुआ था। और पारुल तो उसके साथ की नहीं थी। इसलिए विशेष बन्धुत्व नहीं हो पाया था उन दोनों का। किन्तु रेणु तो अनेक दिन से कलकत्ता देखने के लिये लालायित थी। पारुल को देखकर उसे विश्वास हो गया कि वह कलकत्ते में आ गई है। इसीलिये पारुल को देखकर बहुत प्रसन्न हुई रेणु।

कलकत्ते के सपने भी देखने लगी रेणु। वह चिड़ियाघर जाएगी। अजायबघर देखेगी। माँ काली के दर्शन करेगी। भीमनाग के सन्देश खाएगी। बाघबाजार के रसगुल्ले भी। पूरबी तो उसको रसगुल्ले देती ही नहीं थी कलमुँही। बूटासिंह...और सहसा बाघबाजार के रसगुल्ले भूल गई रेणु। मानस पर न जाने कैसा एक आतंक-सा छा गया। बूटासिंह तो कलकत्ते में ही रहता है। उसने कहीं रेणु को देख लिया तो!

फिर दो घड़ी उपरान्त पारुल ने नौकरानी की सहायता से रेणु के हाथ-पाँव रस्सियों से जकड़ दिए। और उसके मुँह में कपड़ा ठूँस दिया। एक

कोठरी के भीतर हो रहा था यह काण्ड। पारुल उसको पीटने लगी। झाड़ू से। रेणु की समझ में नहीं आया कि सहसा यह क्या होने लगा। पारुल दीदी पर न जाने कैसा प्रेत-सा चढ़ आया था। बड़ी बेदर्द होकर ही रेणु को मार रही थी वह।

और बाबा पास में खड़े-खड़े सब देख रहे थे। भैया भी देख रहे थे। रेणु को कोई इस प्रकार पीटे और बाबा न बचाएँ! और भैया हाथ भी न हिलाए!! जने क्या हो गया था बाबा को! जने क्या हो गया था भैया को!!

रेणु की देह पर मार पड़ रही थी। तमाचों की चोट से दोनों गाल जलने लगे थे। कान बार-बार उमेठे जाकर बाहर आया चाहते थे। सिर के बाल बार-बार झकझोरे जाकर काँटे से चुभ रहे थे। पीठ तो झाड़ू की चोटों से चटख जाने के लिए तैयार थी। किन्तु रेणु को इस सब की चिन्ता नहीं हुई। वह तो यही सोच रही थी कि बाबा उसे क्यों नहीं बचा रहे। भैया पारुल दीदी का हाथ क्यों नहीं पकड़ लेते? निर्निमेष नयनों से देखती रही वह उन दोनों की ओर। जने उन दोनों को क्या हो...रेणु बेहोश हो गई।

कई दिन तक चली वह मार-पीट। रेणु को भूखों मार डाला गया सो अलग। किन्तु रेणु ने किसी से कुछ नहीं माँगा। नौकरानी दो घूँट पानी पिलाने आई तो पी लिया। चावल के चार दाने उसके आगे रक्खे गए तो उसने खा लिए। मुँह खोलकर कुछ नहीं कहा। पारुल तक से यह न पूछा: "दीदी! मुझको मार क्यों रही हो?"

रेणु को जब उस कोठरी से बाहर निकाला गया तो बाबा और भैया वहाँ नहीं थे। पूछने पर पता लगा कि वे देश चले गए हैं। सदा के लिए। फिर लौटकर यहाँ नहीं आएँगे। वह भी फिर कभी लौटकर अपने घर नहीं जाएगी। घर पर सब से कह दिया गया था कि रेणु कलकत्ते गई थी, मोटर के नीचे दब कर मर गई। मित्तिर महाशय ने भी उसकी आस छोड़कर दूसरा ब्याह कर लिया था। रेणु ने मौन रह कर वह सब सुन लिया।

पारुल ने एक मैली-सी साड़ी रेणु को दे दी। पुरानी साड़ी। पहिनी हुई साड़ी। ब्लाउज भी पुराना ही था। पहिना हुआ। रेणु को घिन हुई उन कपड़ों को पहिनते हुए। किन्तु और कपड़े कहाँ थे? उसके अपने दोनों कपड़े

तो पारुल दीदी ने क्रोध में आकर तार-तार कर दिए थे। रेणु ने वे पुराने कपड़े ही पहिन लिए। तन की लाज बचानी थी, इसलिए।

पारुल ने रेणु को घर का काम-काज समझा दिया। बर्तन माँजना, पानी ढोना, कपड़े काँछना, झाड़ू देना, फर्श पोंछना। दो दिन में रेणु सब सीख गई। सुबह से साँझ तक खटती रहती थी वह। उसी घर की चारदीवारी के भीतर। चारदीवारी के उस पार जाने की उसे मनाही थी। पारुल ने आँखें निकाल कर कह दिया था कि उसने घर के बाहर पाँव भी दिया तो उसकी टाँगें तोड़ दी जाएँगी। और बहिनोई थे पुलिस के बड़े अफ्सर। वह भागी तो पकड़ी जाएगी।

किन्तु भागना कौन चाहता था? पारुल दीदी को तो झूठमूठ ही विश्वास हो गया था कि रेणु भाग जाना चाहती है। भागना तो वह जानती ही नहीं थी। घर से भी क्या वह भागी थी? पूरबी ने कहा था कलकत्ते चलो। वह चली आई थी। भागी कहाँ थी वह? किन्तु पारुल दीदी को वह कैसे समझाए कि वह भागने वाली नहीं है?

एक मास बीत गया। दो मास बीत गए। तीन मास। रेणु ने मौन रह कर काट दिया वह काल। धीरे-धीरे पारुल का हृदय पसीजने लगा। अब वह झल्ला कर नहीं बोलती थी रेणु से। कपड़े भी अच्छे-अच्छे देने लगी थी। काम भी उतना नहीं करवाती थी। मोटे काम करने के लिए तो उसने फिर से वही पुरानी 'झी' रख ली थी। रेणु अब यदि दीदी के कमरे में जाती थी तो दीदी रुष्ट नहीं होती थी। और वह अपने पास बठा लेती थी रेणु को। रेणु से बातें भी करना चाहती थी वह।

किन्तु रेणु का मुँह तो मानो किसी ने सी दिया था। अपने-आप तो वह कभी एक शब्द भी नहीं बोलती थी। दीदी कुछ पूछती थी तो वह परि-मित-सा उत्तर दे देती थी। एक दिन हठात् न जाने पारुल को क्या हो गया। रेणु को छाती से लगा कर रोने लगी वह। रेणु सकपका कर दीदी का मुख देख रही थी। दीदी की दोनों आँखों से टपाटप आँसू गिर रहे थे।

पारुल बोली तो उसका स्वर भारी था। उसने कहा: "तूने किया क्या, रेणु! अपना जीवन नष्ट कर लिया। तुझे सूझी क्या, कलमुँही! लाख का

स्वामी छोड़ा। देवता-सरीखे बाप को धोखा दिया। तू जन्म लेते ही मर क्यों न गई, अभागिन!"

रेणु का भी जी भर आया। पारुल से लिपट कर खूब रोई वह। फफक-फफक कर। उसके अन्तर में आँसुओं का सागर जम कर रह गया था। अब संवेदना की सिकन पाकर वह पिघल गया। रेणु ने रो-रोकर पारुल का ब्लाउज तर कर दिया। पारुल की छाती में सिर छुपा कर। पारुल कह रही थी: "रेणु! तूने मेरी अपनी माँ के पेट से जन्म नहीं लिया। पर सच मान, तू मुझे माँ की जाई बहिन से भी बढ़ कर प्यारी लगती है। तुझे मार कर क्या मेरा मन शान्त हुआ, कलमुँही? तू तो मेरी मोनिका जैसी है मेरे लिए। तुझे दुख देकर मेरी छाती में छाले पड़ गये। किन्तु मैं करती क्या, रेणु! तुझे सीधे रास्ते पर भी तो लाना था।"

रेणु की हिम्मत बढ़ गई। उसने पारुल से अनुनय की: "मुझे मेरे घर भेज दो, दीदी! बाबा के पास। भाइयों से मिलने को जी चाहता है। भाभियों को देखूँगी, दीदी!"

"वह क्या सम्भव है, रेणु! घर पर तो अब तेरे लिए स्थान ही नहीं रहा। घर वालों के लिये तो तू मर चुकी। वे तो तेरा किरिया-करम भी कर चुके।"

"किन्तु मैं तो जीती-जागती हूँ दीदी! जाकर उनके सामने खड़ी हो जाऊँगी। वे क्या मुझे दुतकार देंगे, दीदी!"

"नहीं, रेणु! अब तू जीती-जागती नहीं रही। अब तो तू प्रेत बन चुकी है। तेरे बाबा को अपने समाज में सिर ऊपर उठाना है। तेरे भाइयों को अपने लड़के-बालों का ब्याह करना है। तू वहाँ चली गई तो उन लोगों की जात क्या बचेगी? लड़के-वालों का ब्याह फिर कैसे होगा? नहीं, रेणु! घर जाने का विचार तू त्याग दे। एकदम त्याग दे। घर तू फिर किसी दिन नहीं जाएगी।"

रेणु मन मार कर अपने घर को भुलाने की चेष्टा करने लगी। जहाँ उसके जीवन के सोलह साल बीते थे, उस घर को। किन्तु परिस्थितियों ने उसे कुछ भूलने ही नहीं दिया।

: ३ :

अच्छा खाना मिलने लगा था रेणु को। कपड़े भी वह साफ पहिनती थी। निगोड़ा रूप फिर निखरने लगा। नख-शिख सुन्दर थे रेणु के। तपे हुए सोने का-सा दमकता हुआ रँग। ऊपर से चढ़ आई जवानी। उसके न चाहते भी उसकी रूप-माधुरी उसके चारों ओर बिखर-बिखर जा[illegible]। हंसती थी तो दामिनी-सी दमक जाती थी। बोलती थी तो जैसे [illegible] कूक गई। चलती थी तो जैसे मत्त मयूरी नर्तन कर रही हो।

रेणु को अपने रूप-यौवन की चेतना नहीं थी। होती भी कैसे ? किसी ने कभी सराहा ही नहीं था उसका रूप-यौवन। एक समर ही दो-चार बार कविता पाठ करने लगा था। किन्तु वह तो पूरबी को चिढ़ाना चाहता था। रेणु को समर की स्तुति सुनकर लाज नहीं आई थी किसी दिन। उसके गालों में लाली नहीं ललकी थी वे कविताएँ सुनकर। पलकें नहीं झुकी थीं रेणु की। इसलिए रेणु अल्हड़ ही रह गई थी।

और उसके अल्हड़पन ने फिर आग लगा दी उसके जीवन में। अपने घर में वह अल्हड़पन बाबा के वात्सल्य का पात्र बनता। भाइयों के वात्सल्य का भी। भाभियों के परिहास का पात्र बना होता वह अल्हड़पन। ससुराल में उसके कारण रेणु की जवानी में चार चाँद लग जाते। पति के प्रणय की प्रत्येक बूँद पा जाती वह।

किन्तु घर के बाहर, ससुराल से बिछुड़ कर, वही अल्हड़पन उसके दुर्भाग्य का कारण बन गया। अपने स्थान से च्युत होकर सभी कुछ अपने धर्म से भी च्युत हो जाता है। इसीलिए। नहीं तो वैसा अल्हड़पन पाने के लिए प्राप्त-यौवना नारियाँ क्या-क्या नहीं करतीं ? और कितनी हैं जो उसे पा जाती हैं ?

पारुल रेणु की अपेक्षा पन्द्रह-बीस बरस बड़ी थी। यौवन के मध्याह्न में चढ़ चुकी थी वह। पारुल की माँ और रेणु की माँ सगी बहिनें थीं। दोनों ही एक-जैसी सुन्दरी। दोनों बहिनों ने भी अपनी-अपनी माँ का रूप पाया था। रूप-रंग के नाते पारुल रेणु की अपेक्षा अणु-भर भी हीन नहीं थी। लाखों की भीड़ में अकेली दीख पड़ने वाली थी वह।

किन्तु पारुल चार बच्चों की माँ बन चुकी थी। फिर वह कुछ-कुछ रुग्ण भी रहा करती। पारुल की जवानी ढली जा रही थी जैसे। आँखों के नीचे काले-काले घेरे पड़ने लगे थे। अधरोष्ठ के दोनों छोरों पर छोटी-छोटी झुरियाँ। गालों में गुलाब नहीं खिलते थे पारुल के। पीले-पीले पड़ गए थे वे गाल [illegible] पर मुर्दनी-सी झाँकने लग जाती थी कभी-कभी।

[illegible] को सुध ही नहीं थी कि उसकी जवानी गल रही है, उसका रूप ढल [illegible]हा है। वह बच्चों का बनाव-सिंगार करने में अपना बनाव-सिंगार भूल जाती थी। साड़ी मैली हो जाती थी तो बदलने का आलस करने लगती थी पारुल। कई बार तो जूड़ा बाँधने की भी टाल कर देती थी। पारुल अपने घर की रानी थी। किसी को रिझाना नहीं था उसे अपने रूप की हाट सजा कर। फिर वह स्वभाव की भी तो सीधी थी। पति की आँखें देखकर पति के मन की थाह पा जाना उसके बस का नहीं था।

और घर में पारुल ने वह नागिन पाल ली थी। नागिन ही तो थी रेणु। विष की भरी हुई। उसका रूप, उसकी जवानी—सब विष के भरे थे। रेणु के मानस में अमृत का अथाह कुण्ड था, तो भी। रेणु नागिन नहीं बनना चाहती थी। किन्तु नागिन उसे बनना ही पड़ा। केवल घटनाचक्र के कारण। परिस्थितियों के वश में पड़कर।

पारुल के पति की आँखें पड़ने लगीं रेणु पर। पैंतीस-छत्तीस बरस के हट्टे-कट्टे पुरुष थे वे। अंग-अंग से स्वास्थ्य का सौरभ झरा पड़ता था। वर्दी पहिनकर ऐसे लगते थे जैसे किसी देश के राजा हों। रेणु को भी बहुत अच्छे लगते थे वे। वैसे ही जैसे नानी की कहानी के राजकुमार। और रेणु ने सुना भी था कि वे चोर-डाकुओं को पकड़-पकड़ कर मार देते हैं। रेणु उन पर रीझ गई। मन में मैल नहीं था रेणु के। वह तो उनको वैसे ही मानती थी जैसे नानी की कहानी के राजकुमार को। दूर-दूर से देखकर। कभी उनके निकट नहीं गई थी रेणु।

जीजा जी चरित्र के चुस्त ही थे। कभी किसी ने उनको इधर-उधर होते नहीं सुना था। मन पर अधिकार रख कर कर्त्तव्य कर्म करते रहना ही उन की शिक्षा थी, उनके संस्कार थे। पुलिस में होने के कारण उनको सभी

प्रकार के लोगों से पाला पड़ता था। सुन्दरी स्त्रियों से भी। किसी-न-किसी अपराध में पकड़ी जाकर सुन्दर स्त्रियाँ भी थाने में आ ही जाती थीं। किन्तु उनका मन किसी को देख कर कभी मैला नहीं हुआ था। अभी तक।

और अब ? अब तो रेणु हर घड़ी उनके नयनों में नाचने लगी। वे नहीं चाहते थे तो भी वह उनके नयनों में नाचती थी। और पारुल उन नयनों में से निकलने लगी। वे उसको वहाँ रखना चाहते थे तो भी। दो मूर्तियों की होड़ थी। एक की चढ़ती जवानी। दूसरी की ढलती जवानी। एक का रूप निखर रहा था। दूसरी का रूप बिखरने लगा था।

रेणु की मूर्ति हठ कर बैठी। वह बार-बार उनको अपनी ओर बुलाने लगी। उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ हठ पकड़ कर। और उस हठ के सामने वे हारने लगे। नारी का हठ था वह। पुरुष पानी-पानी होने लगा। मन की दुर्बलता दिन-दिन बढ़ती गई। चरित्र की भीत हिल उठी। और एक दिन धरासात् हो गई। रेणु को आलिंगन में भरने के लिए आतुर हो उठे उसके जीजा जी।

एक दिन पारुल को रसोईघर में देर हो गई। उसने रेणु से कह दिया कि वह जीजा जी को पान दे आए। वे भोजन करके उठे थे। रेणु तश्तरी में पान सजा कर ले गई। वे अपने पढ़ने के कमरे में बैठे कागज-पत्तर उलट-पलट रहे थे। रेणु ने तश्तरी उनकी मेज पर रख दी। और वह उल्टे पाँव लौटने लगी। किन्तु जीजा जी ने रोक लिया। वे बोले : "रेणु! देखूँ तुम्हारा हाथ।"

रेणु को रोमांच हो आया। मुख से एक शब्द नहीं निकला उसके। जीजा जी ने उठकर उसका दाहिना हाथ पकड़ लिया। और उसकी पाँचो अंगुलियाँ अपने अधरों से सटा लीं उन्होंने! रेणु के मुख से निकला : "हाय माँ!" और वह अपना हाथ छुड़ाकर भाग आई।

तदनन्तर रेणु जीजा जी से घबराने लगी। उनके सामने ही नहीं पड़ती थी वह। पारुल किसी काम से उसको जीजा जी के पास भेजना चाहती तो वह बहाना कर जाती थी। या दीदी की आँखों के सामने काम खराब कर देती थी। किन्तु हाय रे भाग्य! दीदी ने कुछ भी नहीं समझा। दीदी आँखों

की अन्धी हो गई। दीदी समझ ही नहीं सकी कि रेणु कह क्या रही है। और मुँह खोलकर रेणु से कुछ कहा नहीं गया।

और जीजा जी! वे तो रेणु के पीछे पड़ गए थे। वह जिस ओर होती थी, उसी ओर आ निकलते थे वे। कोई-न-कोई बहाना बना कर। और वहीं ठिठक जाते थे। हिलने का नाम ही नहीं लेते थे। रेणु डर कर काठ हो जाती थी। लाज के मारे मुँह लाल हो जाता था रेणु का। किन्तु जीजाजी का जी उसे देख-देखकर नहीं भरता था। वे कनखियों से देखते रहते थे उस की ओर। न जाने कैसी एक अथाह भूख थी उस देखने में।

रेणु सो रही थी। अपने कमरे में। दीदी और जीजा जी के सो जाने के उपरान्त ही लेटी थी वह। बच्चों को दूध पिलाकर। रात को पीने का पानी उनके कमरे में रख कर। बच्चों को सुलाकर। उसके कमरे में बत्ती नहीं थी। उस दिन न जाने किसने उतार लिया था वहाँ का बल्ब। दिन में उसने लक्ष्य नहीं किया था। और रात को बत्ती जलते न देखकर वह बिस्तर पर पड़ रही थी। थकी हुई थी वह। सो जाना चाहती थी। बिस्तर झाड़े बिना ही।

सहसा रेणु का अंग-प्रत्यंग सिहर उठा। कोई उसके सिरहाने बैठकर उसके बालों में अँगुलियाँ उलझा रहा था। रेणु ने आँखें उठाकर नहीं देखा ऊपर की ओर। वह तुरन्त ही समझ गई कि जीजा जी बैठे हैं उसके बिस्तर पर। और वह सहम गई। जी चाहता था कि उठकर बाहर भाग जाए। किन्तु हाथ-पाँव नहीं हिले उसके। वह चुपचाप पड़ी रही।

समर की बात याद आई। वह भी तो एक रात इसी प्रकार उसके बिस्तर पर आ बैठा था। किन्तु समर तो मतवाला हो गया था। मद के कई गिलास पी कर। तो क्या जीजा जी भी मतवाले हो गए हैं? क्या जीजा जी ने भी मद पी रक्खा है? दुर्गन्ध तो नहीं आ रही थी उनके मुख से। और उसने किसी के मुख से कभी सुना भी नहीं था कि जीजा जी मद पीते हैं। तो फिर...

रेणु के मानस में तर्क उठने लगे। वह क्या करे? कल दीदी से कह दे? किन्तु दीदी तो उसी पर क्रोध करेंगी। पूरबी ने भी समर की हरकत देखकर उसी पर क्रोध किया था। दीदी उस पर क्रोध कर बैठीं तो वह क्या करेगी?

कितने दिन में उतरा था उनका क्रोध ! वह क्रोध फिर चढ़ आया तो वह क्या करेगी ? कहाँ जाएगी ? अपने घर नहीं जा सकती। कहीं भी नहीं जा सकती। दीदी का घर छोड़कर। उस घर के बाहर ठिकाना ही नहीं था उसका। वह चुपचाप लेटी रही। और जीजा जी उसके बालों में अँगुलियाँ उलझाते रहे। न जाने कितनी देर तक। वे एक शब्द भी नहीं बोले। न रेणु ने ही कुछ कहा। और फिर वे अपने-आप उठकर चले गए।

बात दिन-दिन बढ़ती गई। रेणु के मौन का जीजा जी ने एक ही अर्थ लगाया। यही कि रेणु उनकी बात मानती है। उनका मन गवाही देने लगा कि रेणु भी उनसे प्रेम करती है और उनके साथ अभिसार के लिए आतुर है। और उनकी छेड़-छाड़ बढ़ने लगी। अब वे रेणु को अकेला पाकर उसकी बाँह में चिकोटी काट लेते थे। गाल चूम लेते थे रेणु के। उसकी छातियाँ गुदगुदा देते थे। उसका जूड़ा पकड़कर खींच लेते थे। और जाने क्या कविता-सी कहने लगते थे। आँखें मूँदकर। आपा खोए हुए-से।

रेणु चुपचाप सब सह लेती थी। रात को भी। दिन को भी। उसकी समझ में नहीं आता था कि जीजा जी को किस प्रकार समझाए। अन्धे हो गए थे जीजा जी। उनको यह ध्यान ही नहीं रह गया था कि रेणु अनाथ है, अशरण है। किसी दिन दीदी को पता चल गया तो दीदी उसको घर से निकाल देंगी। और तब रेणु कहाँ जाएगी ? रेणु को कुछ भी नहीं सूझा।

एक रात जीजा जी उसके बालों में अँगुलियाँ उलझाते-उलझाते बोले : "रेणु ! अब नहीं सहा जाता।"

रेणु ने रोकर उत्तर दिया : "मैं आपके पाँव पड़ती हूँ, जीजा जी ! मेरी लाज रख लीजिये। मैं दीदी का दिया नमक खाती हूँ। दीदी के साथ नमक-हरामी नहीं करूँगी। मर जाऊँगी। किन्तु दीदी के धन पर डाका नहीं डालूँगी। आपके पाँव पड़ती हूँ, जीजा जी ! मुझे माफ कर दीजिए। मान लीजिए कि मैं आपकी बेटी मोनिका हूँ।"

जीजा जी तड़पकर खड़े हो गए। उनके कान में डंक लगा हो जैसे। उनकी सोई हुई आत्मा जाग उठी। वे उसी क्षण कोठरी से बाहर निकलने के लिये चल पड़े।

किन्तु कोठरी का दरवाजा पार नहीं कर पाए वे । दरवाजे पर पारुल खड़ी थी। उसने अपने दोनों हाथ फैलाकर पति का पथ अवरुद्ध कर लिया। पति ने कहा : "मुझसे बड़ी भूल हो गई, पारुल ! मुझे माफ कर दो।"

पारुल ने दाँत पीसकर उत्तर दिया : "भूल तो मुझ से हो गई। मैंने ही तो इस नागिन को घर में पाला था। दूध पिलाकर। अब यह मुझे नहीं डसेगी तो और किसको डसेगी।"

"रेणु का कोई दोष नहीं है, पारुल ! दोष मेरा है। मैं ही अन्धा हो गया था।"

"दोष न रेणु का है, न तुम्हारा। दोष मेरा है। मेरे कपाल का। कपाल फूटा था तभी तो इस कलमुँही को इस घर में घुसने दिया था।"

"चलो, अपने कमरे में चलो, पारुल ! घर के और लोग सुन लेंगे तो हँसाई होगी। यह काण्ड तुम भूल जाओ।"

"घर के लोगों ने जैसे सुना ही नहीं ! नौकर-चाकर सब तो जानते हैं। सारी की सारी बातें। एक मैं ही अन्धी थी। मेरी भी आँखें आज खुल गईं। अब अपनी आँखों से सब कुछ देखकर कैसे भूल जाऊँ ?"

पारुल सिसकने लगी। रेणु से भी नहीं रहा गया। वह बिस्तर पर पड़ी थी। जड़ बनी हुई। दीदी को रोते देख कर उसका दिल भर आया। उसी के कारण दीदी को वह दिन देखना पड़ा था। देवता से स्वामी के सामने मुख खोला था दीदी ने। खरी-खोटी कहने के लिए। दीदी का परलोक बिगड़ रहा था। यह लोक तो बिगड़ ही चुका था। उसी के कारण।

रेणु बिस्तर से उठकर पारुल के पाँवों पर जा गिरी। और सिर पटक-पटक कर कहने लगी : "मैंने तुम्हारे घर में आग लगा दी, दीदी ! मेरा मुँह झुलस दो, दीदी ! इस मेरे मुख के कारण ही तुम को ये दिन देखने पड़े हैं।"

पारुल ने रेणु को उठा कर छाती से लगा लिया। फिर वह बोली : "तेरा क्या दोष है, कलमुँही ! तू क्यों रोती है ? दोष तो मेरा है। उनका दीदा बिगड़ना देख कर भी मैंने नहीं देखा। मैं क्या घर बसाने योग्य स्त्री हूँ ? मेरा घर तो उजड़ना ही था, रेणु ! कल उजड़ते आज उजड़ गया। किन्तु इसमें तेरा तो कोई दोष नहीं है री ! तू क्यों रोती है ?"

अगले दिन पारुल अपने मैके चली गई। पारुल की सास ने रेणु को बुलाकर कहा : "रेणु ! तेरे रहने का अलग बंदोबस्त कर दिया है, बेटी ! तू इस बुढ़िया के साथ चली जा।"

सास ने सामने बैठी बुढ़िया की ओर संकेत कर दिया। रेणु का कलेजा धक्-से रह गया। उसने एक बार उस बुढ़िया की ओर देखा और फिर अपना सिर झुका लिया। उसके मुख से एक शब्द नहीं निकला। बुढ़िया उसका हाथ पकड़कर अपने साथ ले चली। एक ओर घर का द्वार रेणु के लिए बन्द हो गया था। सदा के लिए।

तीसरा परिच्छेद

रेणु को लेकर बुढ़िया ट्राम पर जा बैठी। दिल फटा जा रहा था रेणु का। पारुल दीदी का प्यार पाया था उसने। दीदी के बच्चों से घुलमिल गई थी रेणु। किन्तु किसी की एक भूल के कारण पल-भर में सब मिट गया! केवल एक भूल के कारण!!

पारुल दीदी मैके के लिए चली तो रेणु ने उसके साथ जाने के लिये अनुनय की थी। दीदी नहीं मानीं। रेणु ने उसके पाँव पकड़ लिए, तो भी नहीं मानीं। दीदी की आँखों में न जाने कैसी एक शीतलता-सी उमड़ रही थी। उन आँखों को देखकर रेणु फिर कुछ नहीं कह पाई थी। उन आँखों में न जाने क्या था। रेणु अपना मानस मसोस कर रह गई थी।

क्या हुआ था दीदी को? उस दिन तो छाती से लगाकर रोई थी। रेणु का सिर सहलाया था दीदी ने। किन्तु...हाँ, उस दिन रेणु को मारा भी तो था उसने। कितनी बेदया बनकर। तो क्या दीदी...

बुढ़िया रेणु का हाथ पकड़ कर ट्राम से नीचे उतर गई। एक बड़े-से बाजार में। रेणु ने पूछा: "नया घर कहाँ है, दादी!"

बुढ़िया बोली: "जदु बाजार में। पास ही तो है। बस आ गया। और हाँ, तू मुझको दादी क्यों कह रही है, कलमुँही! मैं तेरी दीदी से बड़ी थोड़े ही ना हूँ।"

रेणु को हँसी आ गई। आँख की कोर से बुढ़िया को निहारा उसने। और उसके मन ने गवाही दी कि बुढ़िया ठीक ही तो कह रही है। वह तो असमय में ही वृद्धा हुई प्रौढ़ स्त्री थी। उसके मुख की खाल फूलकर लटक गई थी। किन्तु नुकीली नाक तो अभी तक वैसी ही सजग थी। आँखों के

नीचे काले-काले घेरे पड़ गए थे। किन्तु उन आँखों में अभी भी जवानी की जलन बची थी। कटीली-कटीली आँखें थीं वे। सिर पर केश भी अभी तक काले थे। घने-घने, लम्बे-लम्बे केश। और पान के रंग से रचे हुए अधरोष्ठ मानो पुकार-पुकार कर कह रहे थे कि उसके मानस की प्यास अभी भी नहीं बुझ पाई है।

हँसी के साथ-साथ रेणु को भय भी लगा। एक अपूर्व प्रकार का भय। ऐसा भय उसने पहले कभी अनुभव नहीं किया था। न जाने क्या था उस बुढ़िया की आँखों में! रेणु का कलेजा धक्-से रह गया। वह एक प्रकार से रोकर बोली : "तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ, दीदी! मुझे मेरे घर पहुँचा दो। बाबा के पास।"

बुढ़िया बोली : "वहाँ जाना नहीं होगा।"

"वहाँ मेरे बाबा हैं। भैया हैं। भाभियाँ हैं। वहाँ ले चलो मुझे। मैं तुमको अपने सारे गहने दे दूँगी।"

आवेश में रेणु यह भूल ही गई कि उसके अपने कहने योग्य गहने अब कहीं भी नहीं थे। किसी के पास भी नहीं। बुढ़िया बोली : "गहनों की क्या कमी है मेरे पास ? तेरा जी चाहे जितने पहिन लीजो।"

रेणु गिड़गिड़ाई : "तो मुझे अपनी बेटी मान कर दया की भीख दे दो, दीदी!"

रेणु का स्वर कुछ ऊँचा हो गया था। रास्ता चलते-चलते। बुढ़िया ने इधर-उधर देखा। सहसा उसकी आँखें सशंक हो उठीं। और फिर तुरन्त ही वह रेणु के सिर पर हाथ रख कर बोली :

"अरे तो बावली बेटी! अभी कहाँ गाड़ी है तेरे गाँव की ? साँझ को जाएगी। तू कहती है तो तेरे गाँव ले चलूँगी। मुझे क्या ? जहाँ तेरा जी लगे, वहीं पहुँचा दूँगी।"

रेणु की बाछें खिल गईं। और वह चुप-चाप बुढ़िया के साथ चल कर तीन तल्ले की एक बड़ी-सी बाड़ी में प्रविष्ट हो गई। दो तल्ले पर एक बड़ा-सा कमरा था। बेहद सजा हुआ। रेणु को बुढ़िया ने उसी कमरे में ले जाकर बैठा दिया। ऐसी सजावट नहीं देखी थी रेणु ने। मित्तिर महाशय के घर में

भी नहीं।

आधे कमरे में, दक्षिण दिशा की ओर खुलने वाली दो बड़ी-बड़ी खिड़-कियों के नीचे, एक ऊँचा और गुदगुदा गद्दा बिछा हुआ था। मोम-सा मुला-यम। गद्दे पर बिछी थी सफेद चादर। दूध-सी धवल। गद्दे के तीन ओर गाव-तकिए लगे थे। सफेद गिलाफों में मढ़े हुए। रंग-बिरंगे तौलियों से ढके हुए। अगल-बगल की दीवारों पर दो बड़े-बड़े आइने टंगे थे। सामने खड़ी होने वाली एड़ी से चोटी तक अपनी सूरत देख ले, इतने बड़े-बड़े। चारों दीवारों पर ऊपर की ओर टंगी थीं अनेक तस्वीरें। सुन्दर-सुन्दर, सजीली, लचकीली लड़कियों की तस्वीरें। गोरी-गोरी मेम और चीन-जापान की जवानियाँ चारों ओर से रेणु को ललकारने लगीं कि हिम्मत हो तो वह उनके साथ रूप-यौवन की होड़ लगा ले।

बाकी बचे फर्श पर रंगीन मोमजामा बिछा था। गरमी के दिनों में ठंडा-ठण्डा लगने वाला मोमजामा। एकमात्र दरवाजे के एक बगल में खड़ी थी एक आलमारी, जिसका बड़ा-सा पट भी बड़े-से आइने में परिणत किया गया था। दूसरी बगल में करीने से सजे थे हारमोनियम और ग्रामोफोन। तबले की जोड़ी और घुंघरुओं के तोड़े। दरवाजे पर एक चित्र-विचित्र परदा पड़ा था।

कमरे का ठाठ-बाट देखकर रेणु सकपका गई। बुढ़िया ने बैठने के लिए कहा तो रेणु का साहस नहीं हुआ कि गद्दे पर बैठ जाए। दूध-सी धवल चादर मैली हो जाने का डर था। सकुचाई-सी, सिकुड़ी-सी रेणु मोमजामे पर बैठ गई। बुढ़िया ने टोका : "गद्दे पर बैठ जा, माँ! अच्छी तरह से बैठ जा। बैठ जा ना!"

रेणु ने कहा : "नहीं, दीदी! यहीं ठीक है।"

"पगली कहीं की! किसी और का कमरा है जो तू नीचे बैठेगी? तेरा ही तो कमरा है। और तू...

"मैं तो अपने घर जाऊँगी, दीदी! यहाँ पर...

"अपने घर से तो तू आ गई। क्यों, पसन्द नहीं आया यह घर?"

रेणु का कलेजा धक-से रह गया। अभी-अभी तो बुढ़िया ने कहा था

कि साँझ को वह उसे उसके गाँव ले जाएगी । और अब...रेणु ने रोकर कहा : "तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ, दीदी ! मुझे मेरे घर पहुँचा दो । अब और नहीं सहा जाता मुझसे ।"

बुढ़िया ने उत्तर नहीं दिया । वह उठकर कमरे के बाहर निकल गई । और कमरे का द्वार बन्द करके बाहर से कुण्डी लगा दी उसने । कुण्डी का शब्द सुनकर रेणु कुण्ठित हो गई । पिंजरे में बन्द पंछी की नाईं ।

रेणु रानाघाट के पिंजरे से निकली थी तो मन ने मान लिया था कि वह मुक्त हो गई । किन्तु वह तुरन्त ही एक दूसरे पिंजरे में जा फँसी थी । पारुल दीदी के पिंजरे में । वहाँ से निकली तो अब एक तीसरे पिंजरे में फँस गई । और अब की बार पिंजरे की स्वामिनी सर्वथा अपरिचित थी । रेणु उसके साथ किसी प्रकार का हठ नहीं कर सकती थी ।

घुटनों में सिर छुपा कर सिसकने लगी रेणु । न जाने कितनी देर तक सिसकती रही वह । आँसू रुकना ही नहीं चाहते थे । मानों उसका दिल पिघल कर बह जाएगा । और उसको आँसू पोंछने वाला नहीं मिला कोई । संवेदना के दो शब्द कहने वाला कोई । सिर सहला कर पुचकार देने वाला कोई । रेणु ने ऐसे भयानक एकाकीपन का अनुभव इसके पूर्व कभी नहीं किया था । न रानाघाट में । न पारुल दीदी के घर में ।

सिसकते-सिसकते सो गई रेणु । उत्तप्त हृदय को क्लान्त देह ही दग्ध होने से बचाया करती है । देह थक जाती है । सो जाती है । हृदय की अव-हेलना करके । अन्यथा मनुष्य का हृदय कभी का जल कर राख हो गया होता । ऐसे-ऐसे दुख के पहाड़ उल्कापात हुआ करते हैं मनुष्य के सिर पर ।

कमरे का द्वार खुला । खटाके के साथ । किसी की चूड़ियाँ खनक गईं । झनन-झन ! किन्तु रेणु ने सिर ऊपर उठा कर नहीं देखा । कोई आया करे ! उसकी सहायता करने वाला तो कभी कोई आता नहीं ! ! क्या होगा किसी को देख कर ? वह सिर झुकाये सिसकती रही ।

किसी की कोमल अँगुलियों ने रेणु के स्कन्ध का स्पर्श किया । किन्तु रेणु ने सिर ऊपर नहीं उठाया । तब एक कोयल-सी कूक उठी :

"रोया नहीं करते, रेणु !"

स्वर में संवेदना थी। किसी ने उसका नाम लेकर पुकारा था। आत्मीयता का आश्रय लेकर। रेणु ने सिर उठा कर देखा। आँसुओं की झिलमिल झालर के बीच से। एक नाटे कद की कृष्णकाय, साँवली-सलोनी मूर्ति झुकी थी उसके सामने। गद्दे पर दोनों घुटने टेक कर। अपलक आँखों से उसकी ओर देखती हुई। मूर्ति ने उसकी चिबुक का स्पर्श करके उसका मुख और ऊपर उठा दिया। और आँसू पोंछ दिए रेणु के। अपनी साड़ी के आँचल से। रेणु ने निर्निमेष नयनों से मूर्ति का मुख निहारा। ललाम लावण्य ललक रहा था उन साँवले मुख पर। बड़ी-बड़ी दीर्घपक्ष्म आँखों से ममता की निर्झरी बह रही थी।

मूर्ति बोली: "मैं हूँ गौरी।"

रेणु के अन्तर में लुप्तप्राय हँसी की एक लहर दौड़ गई। साँवली छोरी! और नाम गौरी!! किन्तु रेणु के मुख से एक शब्द भी नहीं निकला। वह मुँह वाए गौरी की ओर देखती रही। गौरी ने उसको झकझोर कर कहा:

"तू बोलती क्यों नहीं? निगोड़ी! कुछ तो बोल। जी में आए जो बोल।"

रेणु कुनमुनाई: "क्या बोलूँ?"

"बोलने को तो बहुत कुछ है। अच्छा, अपना नाम ही बोल। अपने मुख से। सुनूँ तो तू कैसे लेती है अपना नाम।"

"रेणु।"

"रेणु?"

"ओस।"

"नाम तेरा बहुत सुन्दर है। तू भी तो सुन्दरी है। हैं ना?"

"मैं क्या जानूँ?"

"जानती तो है...कहाँ से आई है?"

"दीदी के पास से।"

"दीदी के पास से तो सभी आते हैं, कलमुँही! मैं तो तेरे गाँव का नाम पूछ रही हूँ। कौन-सा गाँव है तेरा? तू कलकत्ते की रहने वाली तो नहीं है।"

"कृष्णनगर। तेरा गाँव ?"

"जसोर।"

"यहाँ किसके पास रहती है ?"

"अपने घर में रहती हूँ। और किसके पास रहूँगी ?"

"स्वामी क्या करते हैं ?"

"किसके स्वामी ?"

"तेरे। और किसके ?"

उत्तर में गौरी खिलखिला कर हँस पड़ी। रेणु ने कोई बावली बात कह दी हो जैसे। रेणु ने पूछा ! "हँसी क्यों, गोरी !"

गौरी बोली : " हँसूँ नहीं, निगोड़ी ! स्वामी क्या करते हैं ! ! धत् तेरी की ! कहाँ हैं मेरे स्वामी ? मेरा तो ब्याह ही नहीं हुआ।"

"तो माँग में सिंदूर क्यों लगा रक्खा है ?"

"देखने वालों को अच्छी लगूँ, इसीलिए। और क्या ?"

रेणु ने ध्यान से देखा गोरी को। गोरी तो सचमुच बहुत अच्छी लग रही थी। साँवली थी तो क्या, थी बड़ी सलोनी। कमला नीबू-सी आँखों में काजल। अधरों पर हलकी-सी लिपस्टिक। गालों पर पाउडर। रूज का एक छींटा भी। जतन से किए गए प्रसाधन ने गौरी का लावण्य ललका दिया था। शिफॉन की साड़ी। साँप की नई केंचुली से निर्मल और धवल। श्वेत अरगण्डी का ब्लाउज। कॉलर वाला। कॉलर उसकी लम्बी गर्दन को और भी लम्बी बना रहे थे।

कोई विशेष गहना नहीं था गौरी के गात पर। बस कानों में सफेद मोती के कर्णफूल। हाथों में सोने की जड़ाऊ चूड़ियाँ। काले-काले कुञ्चित बालों की दो वेणी कन्धों पर से उतर कर छाती पर झूल रही थीं। मानों दो विषधर व्याल किसी गुप्त धन की रक्षा के लिए व्याकुल हों। बाईं कनपटी के पास गौरी ने अपने केशपाश में सफेद गुलाब का एक फूल खोंस लिया था। मानो काली घटा में से कार्तिक का चाँद निकल आया हो।

रेणु मुग्ध हो गई। गौरी के रूप की छटा देखकर। क्या रूप पाया था कलमुँही ने ! ! आँख, नाक, ओंठ—जैसे सब के सब रूप की राशि में से

उठाए गए हों। और बोली कैसी मीठी थी कलमुँही की। जैसे कोयल कूक रही हो। हँसी कैसी निर्मल और निर्द्वन्द्व। रेणु ने गौरी के दोनों हाथ अपने हाथों में ले लिए। वह गौरी से बातें करना चाहती थी। अनेक बातें।

किन्तु बातें तो नहीं हो पाईं उस समय। नौकर ने आकर गौरी से कहा : "भाटिया बाबू आए हैं, माँ!"

गौरी उठ खड़ी हुई। रेणु ने पूछा : "कौन आया है, गौरी!"

गौरी ने उत्तर दिया : "टाइम का बाबू है, रेणु! हफ्ते में तीन बार आता है। रात के बारह बजे तक ठहरेगा। अच्छा...टा...टा...कल मिलेंगे।"

गौरी चली गई। रेणु का दिल छीनकर। रेणु के भीतर फिर सब कुछ गडमड हो गया। गौरी! और भाटिया बाबू!! गौरी तो बंगालिन है। उसका ब्याह भी नहीं हुआ। वही तो कह रही थी अपने मुख से कि उसका ब्याह नहीं हुआ। तो उसके पास भाटिया बाबू का क्या काम।

रेणु का जी चाहा कि गौरी के कमरे में जाकर देख ले। रेणु के कमरे का दरवाजा अब खुला था। कैसी है यह बाड़ी? कौन-कौन रहते हैं यहाँ? गौरी का कमरा भी तो कहीं यहीं होगा? देखूँ तो भाटिया बाबू कैसा है? और गौरी उसके साथ क्या-क्या बातें करती है? रेणु उठकर खड़ी हो गई।

किन्तु इसी समय वह बुढ़िया कमरे में घुस आई। कपड़े बदल कर। न जाने रेणु को वहाँ लाते समय उसने विधवाओं-जैसे वस्त्र क्यों पहिने थे? अब तो वह बड़ी भड़क के साथ सज कर आई थी। बड़ी चटकीली थी उसकी रेशमी साड़ी। और ब्लाउज भी चटकीला। बिना आस्तीन का ब्लाउज। मुख पर पाउडर और रूज पोत रक्खे थे। होठों पर लिपस्टिक। और गहने पहिन लिए थे बुढ़िया ने। बहुत सारे गहने। सोने के। भारी-भारी। सिर से पाँव तक।

बुढ़िया की त्यौरी चढ़ी देखकर रेणु डर गई। और बाहर जाने का मनोरथ त्यागकर वह वहीं बैठी रही। बुढ़िया ने कर्कश स्वर में कहा : "चल नहा ले, रेणु! और फिर खा कर सो जा।"

बुढ़िया की बात निर्मम थी। बात कहने के लिए खुले हुए मुख को बन्द कर देने वाली। रेणु फिर उठकर खड़ी हो गई।

उसी समय एक अपरिचित पुरुष ने कमरे का परदा उठाकर भीतर प्रवेश किया। रेणु ने ध्यान से देखा। बंगाली नहीं था वह। जने किस देश का था। मलमल का महीन कुर्ता। खिचड़ी बने हुए बालों पर काली गोल टोपी। मुँह पान से ठसाठस भरा हुआ। बोलने में तकलीफ हो रही थी बेचारे को। बोला तो भाषा अस्पष्ट। रेणु पहिले-पहिले उसकी बात का अर्थ ही नहीं समझ पाई। वह बंगला में ही बोल रहा था। तो भी।

बुढ़िया नवागन्तुक की दो बातें सुनकर तमक उठी। आँखें निकाल कर बोली: "रुपए ले गया और लौट कर सूरत भी नहीं दिखाई, ननकू!"

ननकू बोला: "सब ठीक करके ही आया हूँ, मालकिन! आखिर ऐसे कामों में देर भी तो लगती है।"

"क्या ठीक कर आया?"

"सेठ बाहर गया था। आज ही टकराया है। बोला नया माल हो तो वह गाहक है। लेकिन माल होना चाहिए एकदम फरेश। मुहमाँगा दाम देगा सेठ। बोलो, मालकिन! है कुछ बँदोबस्त?"

बुढ़िया ने कनखियों से रेणु को दिखा दिया। ननकू रेणुकी ओर घूरने लगा। रेणु के रोंगटे खड़े हो गए। न जाने क्या था ननकू की निष्पलक आंखों में। बुढ़िया बोली: "गोदाम से आई है। आज ही। कुछ तेल-पालिश हो ले तब देखना। रानी की आँखें कभी धोखा नहीं खातीं। परख कर पूरा माल ही उठाती है रानी।"

ननकू बोला: "तो कल साँझ की बात पक्की रही। सात-आठ बजे। अब की बार सेठ को फाँस लेना, मालकिन! मुर्गी है बहुत मोटी। हमारी भी परवस्ती हो जाएगी।"

"सेठ अब की बार आ जाए। बस फिर कभी फरेश नहीं माँगेगा...तो बात पक्की रही ना? और किसी की हाँ तो नहीं करूँ ना?"

"सोलह आने पक्की बात है। सेठ को लेकर ही आऊँगा, मालकिन!"

ननकू चला गया। रेणु का हाथ पकड़ कर बुढ़िया उस कमरे से बाहर निकल आई। इसी समय हार्मोनियम का स्वर सुन पड़ा। पास के कमरे से। फिर तबले पर थाप पड़ी। और किसी के पाँव में बँधे घुँघरू बज उठे।

छूम···छूम···छन···नन ! शायद गौरी नाच रही थी। परदे वाले कमरे में। रेणु का जी चाहा जाकर देख ले। किन्तु बुढ़िया ने उसका हाथ नहीं छोड़ा !

: २ :

अगले दिन बुढ़िया ने रेणु को एक पल भी अपनी आँखों से दूर नहीं होने दिया। किन्तु वह बोलती रही उसी निर्मम वाणी में। यहाँ बैठ जा। वहाँ सो जा। यह खा ले। वह पी ले। यह कर ले। वह कर ले। रेणु कठपुतली के समान-सब काम करती रही। आदेशानुसार। मुँह से उसके एक शब्द भी नहीं निकला। उसको मानो काठ मार गया था।

रात को बुढ़िया के पास सोई थी वह। बुढ़िया के ही कमरे में। बड़ा सजा-सजाया कमरा था। रेणु के कमरे से भी बढ़िया ठाठ-बाट वाला। बुढ़िया ऊँचे पलंग पर सोई। रेणु नीचे गद्दे पर। रात भर एक नीली बत्ती जलती रही। कमरे का ताला भीतर से बंद था। बुढ़िया खुर्राटे भरती रही। किन्तु रेणु को ऐसा लगा जैसे बुढ़िया उसकी चौकसाई कर रही है। रेणु कहीं भाग न जाए। रेणु को एक पल के लिए भी नींद नहीं आई।

प्रातःकाल रेणु उठी तो पलकें टूट कर गिरा चाहती थीं। आंखों के भीतर पुतलियाँ सुलग-सी रही थीं। इसलिए वह दोपहर का खाना खाते ही सो गई। शरीर के धर्म से विवश होकर। सोना चाहती नहीं थी, तो भी। रेणु का मन कहता था कि वह सो गई तो उसके साथ न जाने कैसी अनहोनी हो जाएगी। मानो कोई उसका कुछ छीन ले जाएगा। फिर भी निगोड़ी नींद नहीं मानी। वह सो ही गई। और कई घंटे सोती रही।

रेणु सो कर उठी तो दिन ढल चुका था। शरीर में अपूर्व स्वस्थता की अनुभूति व्याप्त थी। भोजन एवं शयन ने अपना काम किया था। और इसके पूर्व कि वहां का वातावरण फिर से रेणु के प्राणों को पंकिल कर देता, गौरी आकर उसे पकड़ ले गई। स्नान के लिए। बड़े से स्नानघर में। और गौरी ने उसके शरीर पर कपड़े की एक कत्तर भी नहीं रहने दी।

रेणु को बड़ी लाज आई। स्नानघर का दरवाजा भीतर से बन्द था, तो भी। किन्तु बत्ती तो जल रही थी !! गौरी स्वयं भी विवस्त्रा हो गई थी। और दाँत निपोर रही थी निगोड़ी !! हाय माँ ! ऐसे भी कहीं हुआ करता

है ? रेणु की समझ में नहीं आया कि अपने दो हाथों से वह अपना मुख ढाँके, अथवा स्तनमण्डल अथवा जघनप्रान्त । और गौरी ने तो उसे कुछ भी नहीं ढकने दिया । उसके दोनों हाथ अपने हाथों में दबा लिए गौरी ने ।

गौरी बोली : "मरी क्यों जा रही है, कलमुँही ! कोई देख थोड़े ही रहा है तुझको ?"

रेणु ने कहा : "और तुम जो..."

"मैं ! मैं तो लड़की हूँ !!"

"फिर भी...

"हत् तेरे की । तू तो छुईमुई है ।"

होश सम्भालने के उपरान्त रेणु कभी किसी स्त्री के सम्मुख भी विवस्त्रा नही हुई थी । उसको सब समय बड़ी लाज आया करती । अपनी देह को ले कर । कभी आँचल भी इधर से उधर नहीं होने देती थी वह । किन्तु गौरी ने उसको विवस्त्रा कर दिया । और कोई होता तो रेणु को बड़ा क्रोध आता । किन्तु गौरी पर उसको क्रोध नहीं आया । जने क्या जादू था उस काली-कलूटी में ? उसका मुँह देखते ही रेणु के मन का भय, संताप, शोक—सब दूर हो जाते थे ।

रेणु को साबुन से मल-मल कर नहलाया गौरी ने । सिर पर शैम्पू डाल कर झाग का स्तूप खड़ा कर दिया । रेणु ने अपने बालों में हाथ फेरा । मानो रेशम के हो गए थे । पहिचाने नहीं गए वे बाल । उसके बाल तो ऐसे चिकने-चिकने, नरम-नरम नहीं थे कभी । गौरी ने न जाने क्या चमत्कार कर दिया था । रेणु कृतज्ञ-सी होकर गौरी का मुँह निहारने लगी । गौरी हँस रही थी । और रेणु के शरीर पर साबुन मल रही थी । हरे रंग का सुगन्ध-भरा साबुन ।

फिर गौरी रेणु को अपने कमरे में ले गई । रेणु के कमरे जैसा ही कमरा था । उतना ही बड़ा । वैसा ही सजा हुआ । बस गद्दे के एक कोने में चार-पांच पुस्तकें और पत्रिकाएँ ही अधिक थीं । तो गौरी पढ़ती है ! क्या पढ़ती है ? 'नानी की कहानी' ? अथवा 'उन्मुक्त यौवन' ? किन्तु गौरी ने कुछ पूछने ही नही दिया । न वे पुस्तकें ही देखने दी रेणु को ।

गौरी तो हाथ धोकर रेणु के पीछे पड़ी थी । बड़े से शीशे के सामने एक

कुरसी पर रेणु को बैठाकर उसका सिंगार कर रही थी वह। बीच-बीच में वह रेणु का मुख अपने हाथों में लेकर चूम लेती थी। कभी कपोल। कभी अधर। वे चुम्बन भी बुरे नहीं लगे रेणु को। गौरी के चुम्बन में भी चमत्कार था।

बुढ़िया एक बार आकर रेणु के लिए कपड़े और गहने दे गई। फिर लौट कर देख गई कि गौरी अपना काम कैसा कर रही है। बुढ़िया की आँखों में पकड़ थी। बनाव-सिंगार की बारीकियों की परख। वह भीतर आती थी तो गौरी आशंकित सी उसका मुख देखने लगती थी। और वह चली जाती थी तो एक दीर्घ निश्वास छोड़कर फिर अपने काम में जुट जाती थी।

जाने कितना परिश्रम करके गौरी ने रेणु का जूड़ा बाँध दिया। जूड़े में खोंस दी कई बड़ी-छोटी सूइयां। चाँदी की सूइयाँ जिनके एक सिरे पर सोने के घुँघरू लटक रहे थे। सामने लगे शीशे में रेणु ने देखा कि उसकी प्रतिच्छाया के पीछे कोई नवयौवना पीठ मोड़ बैठी है। उस नवयौवना का जूड़ा बड़ा सुन्दर लगा रेणु को। तब वह मुड़कर गौरी से बोली :

"गौरी! मेरा भी ऐसा ही जूड़ा बाँध दे ना।"

गौरी हँसने लगी। खिलखिला कर बोली : "तो यह किसका जूड़ा है, कलमुँही!"

रेणु की समझ में नहीं आई वह बात। उसने फिर सामने के शीशे में देखा। वह नवयौवना उसी प्रकार पीठ किए बैठी थी। गौरी ने कहा : "तू उठकर खड़ी हो तो, रेणु!"

रेणु उठ खड़ी हुई। साथ ही वह नवयौवना भी उठ खड़ी हुई। पीठ मोड़े। रेणु चहक उठी : "अरे गौरी! यह तो मैं ही हूँ!!"

गौरी बोली : "तू नहीं, तेरा प्रेत!"

तब गौरी ने गहरे नीले रंग की साड़ी रेणु की देह पर सजा दी। रेणु ने पहिले कभी इस ढंग से साड़ी नहीं बांधी थी। हाँ, पारुल दीदी बाँधती थी ऐसे ढंग से साड़ी। शायद बड़े शहर में ऐसे ही बाँधी जाती हो। फिर नीले रँग का ब्लाउज। लोकट गले वाला। कसकर बाँधी हुई ब्रेजियरी में से स्तन-द्वय का जो भाग ऊपर उभर आया था, वह ब्लाउज के बाहर ही रह गया। रेणु ब्लाउज के साथ खींच-तान करने लगी। स्तनमण्डल का अनावृत भाग

ढकने के लिए।

गौरी उसका हाथ पकड़ कर चिल्लाई : "ओ माँ ! ब्लाउज को फाड़ डालेगी क्या ?"

रेणु बोली : "यह तो छोटा है, गौरी ! दूसरा पहना दे।"

"छोटा नहीं, कलमुँही ! चुस्त है, चुस्त। आज-कल ऐसा ही फैशन है।"

"फैशन-वैशन मैं नहीं जानती। मैं नहीं पहिनूँगी यह ब्लाउज। लाज नही आएगी ?"

"अच्छा, तो बुलाती हूँ रानी माँ को। कह दूँगी मेरे बस की नहीं है यह गँवइ गाँव की छोरी।"

"रानी माँ कौन ?"

"अरी रानी माँ को नहीं जानती ? तुझे यहाँ लाई कौन है ? और तू है किनके मकान में ? रानी माँ को नहीं जानती ! ! बुद्धू कहीं की !"

बुढ़िया का नाम सुनते ही रेणु को साँप सूँघ गया। ब्लाउज बदलने का नाम नहीं लिया उसने। और जब गौरी ने उसको आपादमस्तक सजा कर शीशे के सामने खड़ा कर दिया तो रेणु से भी हँसे बिना नही रहा गया। हर्ष की पुट थी उस हँसी में। अपने रूप के निखार पर एक नवयौवना नारी का सहज, सरल स्वाभिमान। किन्तु गौरी ने उसे जी भर कर देखने नहीं दिया अपना रूप। वह रेणु के कन्धे पकड़ कर उसे अपनी ओर घुमाती हुई बोली : "तुझे देखकर तो बस..."

रेणु ने पूछा : "बोल ना, गौरी ! तू क्या कह रही थी ?"

"जी चाहता है कि मैं लड़का होती।"

"तो क्या होता ?"

"तुझे लेकर भाग जाती।"

"क्या करती मेरा ?"

"किसी दिन कोई लड़का तुझे मिलेगा तो सब समझ जाएगी।"

गौरी हँसने लगी। रेणु का कलेजा धक्-से रह गया। उसको वह पुस्तक याद आ गई। 'उन्मुक्त यौवन'। और समर याद आ गया। और जीजा जी याद आ गए। धत् ! गौरी भी क्या बात करती है ! ! कलमुँही देखने में तो

इतनी सुन्दर है। और मन की ऐसी खराब। गौरी की बोली ही मीठी है। भीतर तो विष की बुझी है गौरी।

रानी माँ ने आकर रेणु को आपादमस्तक निहारा। गौरी साँस रोके रानी माँ का मुँह ताक रही थी। वह साँस उसने तभी छोड़ी जब रानी माँ ने रेणु को पास कर दिया। गर्दन हिला कर। तब गौरी ने पूछा : "माथे पर बिन्दी लगाऊँ, या माँग में सिंदूर ?"

रानी माँ ने कहा : "बिन्दी लगा दे।"

रेणु को बिन्दी पसन्द नहीं थी। बिन्दी तो कँवारी लड़कियाँ लगाती हैं। उसका तो ब्याह हो चुका है। वह तो सिंदूर ही लगाएगी। उसने कह दिया : "मैं तो सिंदूर लगाऊँगी।"

रानी माँ ने डाँट दिया : "नहीं, सिंदूर से सेठ चिढ़ता है।"

सेठ चिढ़ता है ? सेठ कौन ? उससे रेणु का क्या सम्बन्ध ? वह चिढ़ा करे ! रेणु तो सिंदूर ही लगाएगी। किन्तु रानी माँ के सामने रेणु का मुख नहीं खुल पाया। और गौरी ने उसके माथे पर बिन्दी लगा दी। तिलकाकार। लाल किनारे। बीच में चमचमाती हुई।

फिर रेणु के वस्त्रों पर सैंट छिड़क कर गौरी उसे उसके कमरे में छोड़ आई। बाहर वह काली टोपी वाला ननकू खड़ा-खड़ा रानी माँ से बातें कर रहा था। रेणु को देखकर बोला : "अप्सरा है, मालिकिन ! अप्सरा ! सेठ लट्टू हो जाएगा। अब की बार देखूँ कहाँ बचकर जाता है बच्चू।"

रेणु ने सुन ली वह बात। इतना तो वह समझ गई कि बात का सम्बन्ध उसके साथ है। किन्तु बात का अर्थ वह नहीं लगा पाई।

गौरी रेणु को वहाँ बैठाकर अपने कमरे की ओर चली गई। तुरन्त ही लौट आने का वायदा करके। और गौरी ने अपना वायदा पूरा कर दिया। लौटी तो छुरी-सी तीखी लग रही थी। जने कैसा बेहया वेश बनाया था निगोड़ी ने। साड़ी नहीं पहनी थी। प्याजी रँग का रेशमी गरारा। प्याजी रंग की ही लम्बी कमीज। हल्के गुलाबी रंग की चुन्नटदार ओढ़नी। और बालों में वे दो-दो वेणियाँ भी नहीं बनाई थीं। बस एक लम्बी चोटी गूँथ कर फूलों की माला से बांध ली थी। कानों में हीरे के बड़े-बड़े जड़ाऊ ईयरिंग

लटक रहे थे। और माँग पर पड़ी टकी की चेन में लटकती हुई सोने की टिकली माथे पर ढल-ढल जा रही थी। रेणु ने ऐसा वेश इसके पूर्व कभी नहीं देखा था।

गौरी ने पूछा : "कैसी लग रही हूँ, रेणु !"

"तू कुछ भी पहिन ले, लगेगी अच्छी ही। किन्तु क्यों बनाया यह वेश ?"

"नाचूँगी ना, इसलिए। तुझे नाचना आता है ?"

"नहीं तो।"

"गाना ?"

"नहीं।"

"तो सीख जाएगी। रानि माँ से कह देती हूँ तेरे लिए उस्ताद रख देंगी।"

"क्या करूँगी वह सब सीख कर ? मुझे नहीं सीखना।"

"बिना सीखे कैसे चलेगा री ?"

रेणु की समझ में नहीं आया कि क्यों नहीं चलेगा। उसने प्रश्न-सूचक दृष्टि से गौरी की ओर देखा। गौरी बोली : "और नाचने-गाने से शरीर स्वस्थ रहता है। जी बहल जाता है सो अलग। गाना सुनाऊँ ?"

रेणु ने कहा : "हाँ, सुनाओ !"

गौरी ने नौकर को पुकारा। वह आकर हारमोनियम गौरी के आगे रख गया। और गौरी उसे खोलकर परदों पर अँगुलियाँ चलाने लगी। लम्बी-लम्बी, पतली-पतली अँगुलियाँ। रेणु देखती रह गई। क्या करामात है कलमुँही की अँगुलियों में ! कैसी कलगोरख-सी चलती हैं ! !

गौरी ने पूछा : "बँगला में गाऊँ या हिन्दी में ?"

रेणु बोली : "बंगला में गा। हिन्दी मेरी क्या समझ में आएगी ? एक अक्षर तो जानती नहीं। तू जानती है ?"

"हाँ, मैं तो खूब जानती हूँ। तुझे सिखा दूँगी।"

"क्या करूँगी सीखकर ?"

"हिन्दी सीखे बिना कैसे काम चलेगा, रेणु !"

रेणु फिर असमंजस में पड़ गई। हिन्दी सीखे बिना क्यों नहीं काम चलेगा? कौन-सा काम नहीं चलेगा?

गौरी ने कहा : "लो ले सुन मेरा गाना। बंगला गाना ही गाती हूँ।"

गौरी की अँगुलियाँ फिर हारमोनियम के परदों पर दौड़ने लगीं। आलाप लिया तो रेणु मुग्ध होकर गौरी का मुँह ताकने लगी। कलमुँही के गले में न जाने क्या शरबत घुला था! जैसी सुन्दर अँगुलियाँ, वैसा ही सुन्दर गला। हारमोनियम के स्वर से स्वर मिला दिया गौरी ने।

किन्तु गौरी अपना आलाप पूरा नहीं कर पाई। कमरे का परदा उठाकर रानी माँ भीतर चली आईं। उसके पीछे-पीछे वह काली टोपी वाला ननकू था। और उन दोनों के पीछे एक और पुरुष। गौरी उठकर खड़ी हो गई। उसकी देखा-देखी रेणु भी उठकर खड़ी हो गई। गौरी ने नए पुरुष को नमस्ते किया। रेणु ने सिर झुका लिया। वह पुरुष आँखें फाड़े उसी की ओर देख रहा था।

रेणु का जी चाहा कि कमरे के बाहर चली जाए। जा बैठेगी गौरी के कमरे में। जने ये सब लोग वहीं क्यों नहीं जा बैठे? रेणु के पाँव भी बाहर जाने के लिए उठे। किन्तु रानी माँ रास्ता रोके खड़ी थी। उसकी ओर देखकर रेणु के पांव उठे-के-उठे रह गए।

: ३ :

नया पुरुष धम-से गद्दे पर गिर पड़ा। एक गाव तकिया अपनी ओर खींचकर। सिर पर से बादामी रंग की किश्तीनुमा टोपी उतार कर उसने इस प्रकार एक ओर फेंक दी, जैसे फिर कभी उसकी जरूरत ही नहीं पड़ेगी।

रेणु ने कनखियों से उसकी ओर देखा। महीन धोती। सिल्क का कुरता। गले में सोने की चेन। शरीर कुछ भरा हुआ था। किन्तु स्थूल नहीं था। गालों पर चेचक के दाग। दस-पाँच। रंग खूब गोरा। लाली लिए हुए। सिर के बाल उड़ने लगे थे। बचे हुए बालों को तेल की सहायता से खोपड़ी के साथ चिपकाया गया था। नख-शिख अच्छे थे। दाँत बड़े सुन्दर। एकदम मोती-से चमक रहे थे। शायद वह पान नहीं खाता था। उसकी वयस का अनुमान रेणु नहीं लगा सकी। वह ऐसी बातों में अभी कच्ची थी। लड़का-सा नहीं

लगा वह । किन्तु बुढ़ापे की ओर अग्रसर भी नहीं । बस, रेणु के बड़े भैया जितना बड़ा था ।

अकस्मात उस पुरुष ने लपक कर रेणु का हाथ पकड़ लिया । और उसको अपनी ओर खींचने लगा वह । रेणु को जैसे साँप ने काटा हो । वह सिहर कर पीछे हट गई । किन्तु कलाई पर उस पुरुष की पकड़ बहुत मजबूत थी । रेणु छुड़वा न पाई । उसका मुँह लाल हो गया । माथे से पसीना झरने लगा । आँखों में आँसू भर आए । सारी देह में काँटे-से गड़ रहे थे ।

पुरुष ने पूछा : "यह जंगल की मोरनी कहाँ से पकड़ लाई, रानी माँ !"

रानी माँ हतप्रभ हो गई । फिर उसने लाल-लाल आँखें निकालकर रेणु की ओर देखा । गौरी की ओर भी । जैसे वह दोनों को मार बैठेगी । गौरी ने हँसकर शान्त स्वर में कहा : "आप जाइए, रानी माँ ! मैं सब समझ लूँगी । आप चिन्ता मत करें । यहाँ सब ठीक है ।"

रानी माँ गुर्राई : "तेरा सिर ठीक है, हरामजादी ! तीन घण्टे से उसके साथ है । और...

गौरी रानी माँ के क्रोध की अवहेलना करके बोली : "अरे तो आप जाइए भी, रानी माँ ! आप क्या जानें नए जमाने की बातें ? नए जमाने में प्रथम मिलन इसी प्रकार हुआ करता है ।"

रानी माँ बड़बड़ाती हुई चल पड़ी । दरवाजे पर पहुँचकर उससे नहीं रहा गया । लौट कर आई और बोली :"रेणु चौदह बरस की है, सेठजी ! एक दिन भी ज्यादा निकल आए तो मेरा रानी नाम नही । हाँ, देह की उठान बड़ी है । किन्तु...

सेठ ने पूछा : "रेणु ? रेणु कौन, रानी माँ !"

उत्तर दिया गौरी ने । हंस कर बोली : "यह जंगल की मोरनी, सेठजी !"

सेठ ने रेणु का हाथ छोड़ दिया । फिर वह बोला : "बैठ जा, रेणु !"

रेणु की आँखों में अन्धेरा आ गया था । उससे बैठने के लिए न कहा गया होता तो वह वैसे भी गिर पड़ती । वह धम से बैठ गई । मोमजामे पर । सेठ ने कहा : "वहाँ नहीं, यहाँ बैठ ! मेरे पास ।"

रेणु अपने स्थान से नहीं हिली । रानी माँ चिल्लाई : "वहाँ क्यों नहीं

बैठनी, हरामजादी !"

गौरी ने रानी माँ को समझाया : "यह आपसे शरमाती है, रानी माँ ! आप गई और यह खिली। अब आप जाइए भी।"

रानी माँ चली गई। काली टोपी वाला वहीं खड़ा था। सेठ ने उससे पूछा : "कुछ पीने-पिलाने का प्रबन्ध भी है, ननकू !"

ननकू ने झुक कर सलाम किया। फिर वह बोला : "जी, क्यूँ नहीं ! अभी आ जाएगी सब चीज। ब्राण्डी लाऊँ या ह्विस्की ?"

सेठ ने ह्विस्की का आर्डर दे दिया। ननकू जाने लगा तो गौरी बोली : "अच्छी सी देखकर एक पाइन्ट ब्म्बुई भी लेता आइयो, ननकू !"

ननकू ने कहा : "जी, मालकिन !"

और वह चला गया। सेठ ने गौरी का हाथ पकड़ कर खींचा। गौरी उस से सट कर बैठ गई। मुँह से मुँह मिला कर। सेठ ने पूछा : "गौरी ! आज तो तू नाचेगी ना ?"

गौरी ने कहा : "हाँ नाचूँगी ! आप कहेंगे तो क्यूँ नहीं नाचूँगी !"

"और यह नया पंछी ? यह भी नाचना जानता है ?"

"यह तो जंगल की मोरनी है, सेठजी ! जंगल का नाच देखना चाहोगे तो यह भी नाच देगी।"

सेठ हँसने लगा। रेणु को गौरी का आचरण अच्छा नहीं लग रहा था। उसकी बातें सुनकर तो रेणु को क्रोध चढ़ आया। सेठ की बातों में बातें मिला रही थी, कलमुँही ! जंगल का नाच नाचेगी जंगल की मोरनी ! ! और अपने आप को न जाने...

गौरी ने रेणु के गाल पर चिकोटी काट कर कहा : "मरी क्यूँ जा रही है, कलमुँही ! ठीक से बैठ क्यूँ नहीं जाती ?"

रेणु ने मरी आवाज में उत्तर दिया : "गौरी ! मैं तेरे कमरे में जाकर बैठती हूँ।"

"क्यूँ ? मेरे कमरे में क्यूँ ? किराए पर तो तेरा कमरा चढ़ा है।"

रेणु की समझ में कुछ नहीं आया। वह मुँह फेरे बैठी रही। बुरी तरह से घबराई हुई। सेठ चुपचाप मुस्करा रहा था। कभी गौरी को देखकर, कभी

रेणु को देख कर।

ननकू कई बोतलें लेकर लौट आया। बढ़िया-सी सिगरेट का एक डिब्बा भी। सब सामान फर्श पर रखकर उसने दरवाजे के ऊपर बनी ताक में से कई रंगीन गिलास उतार लिए। फिर वह उनको एक काठ की ट्रे में सजाने लगा। गौरी ने कहा : "इनको धो तो ले, हरामजादे ! माँ के पेट से जैसा मूर्ख पैदा हुआ था, वैसा ही रह गया।"

ननकू उठकर गिलास धोने चला गया। गौरी ने डिब्बा खोलकर दो सिगरेट निकालीं और दोनों को मुँह में लगा कर सुलगाने लगी। सेठ ने टोक दिया : "मेरी सिगरेट रेणु सुलगाएगी।"

गौरी बोली : "सुलगा देगी, सेठजी ! सिगरेट भी सुलगा देगी। अभी देर ही कितनी हुई है ? इस को नई-पुरानी तो हो लेने दो। देखते नहीं यह कैसी धरती में धँसी जा रही है ?"

सेठ ने हठ नहीं की। गौरी ने दोनों सिगरेट सुलगाकर एक सेठ के मुँह में लगा दी। और दूसरी को वह स्वयं पीने लगी। रेणु को बहुत बुरी लगी वह बात। लड़कियाँ भी कहीं सिगरेट पीया करती हैं ! ! किन्तु कैसे कहती वह गौरी से कि गौरी सिगरेट न पिए ? गौरी अकेली होती तो डाँट देती कलमुँही को। सेठ के सामने नहीं।

ननकू गिलास धो कर ले आया। और गौरी के सामने सारा समान सजा कर बाहर चला गया। गौरी ने ह्विस्की की बोतल खोलकर दो गिलासों में मद ढाला। फिर सोडा डालकर गिलास भर दिए। रेणु कनखियों से सब कुछ देख रही थी। समर भी ऐसा ही किया करता था। समर के मद में तो बड़ी दुर्गन्ध आया करती थी। इस मद में भी दुर्गन्ध ही थी। किन्तु भीनी-भीनी। वैसी नहीं कि कलेजा मुँह को आ जाए।

सेठ ने गौरी से पूछा : "तीसरा गिलास खाली क्यों छोड़ दिया ?"

गौरी बोली : "वह भी भरा जाएगा। किसी दिन। अभी उस दिन में देर है।"

सेठ ने हठ नहीं की। गौरी का दिया हुआ गिलास उसने ले लिया। तब गौरी ने दूसरा गिलास अपने हाथ में उठाकर सेठ के गिलास से टकरा दिया।

दूसरे क्षण दोनों ने गिलास अपने-अपने मुँह से लगाकर मद गटक लिया। कई-कई घूँट। रेणु सिहर उठी। उसको भय लगने ल ा कि अब वे दोनों मारपीट करेंगे अथवा अण्ड-बण्ड बकेंगे। समर भी तो मद पीकर मारपीट करता था, अण्ड-बण्ड बकता था। पूरबी भी बकती थी। रेणु के देखते-देखते निर्लज्जता का आचरण करती थी पूरबी। तो क्या गौरी भी...।

गौरी ने रेणु को घूरकर पूछा : "प्यास तो तुझे भी लगी होगी ?"

रेणु ने उत्तर नहीं दिया। सिकुड़ कर रह गई। गौरी ने छोटी सुराही-दार बोतल उठाकर कहा : "ले, थोड़ा-सा मीठा शरबत पी ले, रेणु !"

रेणु ने तमककर कहा : "मैं नहीं पीऊँगी। मर जाऊँगी। पर यह नहीं पीऊँगी।"

"अरी तो मद कहाँ पिला रही हूँ, कलमुँही ! ड्रम्बुई को मद कहती है ! गँवार कहीं की ! ! यह तो अंग्रेज़ी शरबत है।"

"कह तो दिया, गौरी ! मैं नहीं पीऊँगी, नहीं पीऊँगी।"

"तो मर।"

गौरी फिर सेठ की ओर मुख फेर कर मद पीने लगी। सिगरेट का धुआँ भी उड़ाने लगी। रेणु का जी चाहा कि गौरी का मुँह नोच ले। उसे गौरी पर बड़ा क्रोध आ रहा था। कैसी पराई-पराई बन गई थी कलमुँही ! अभी साँझ तक तो ऐसी बनी हुई थी जैसे जन्म-जन्म की सखी हो।

सेठ बोला : "कुछ राग-रँग नहीं होगा, गौरी !"

गौरी ने कहा : "होगा क्यों नहीं, सेठजी ! राग-रँग तो जरूर होगा।"

"तो फिर हो जाए। जी उचट रहा है।"

"थोड़ी पी तो लेने दो ! बड़े निठुर हो, सेठजी ! अपने जी की सोच ली। गौरी के जी की सुध नहीं रही।"

"अरे पीने को कौन मना करता है ? ले पी। जी भर कर पी।"

सेठ ह्विस्की की बोतल उठाकर गौरी के गिलास में उलटने लगा। गौरी ने गिलास हटा लिया। ह्विस्की उसके कपड़ों पर बिखर गई। गौरी ने तुनक-कर कहा : "बड़े बे-सबरे हो जी !"

सेठ हँसने लगा। फिर बोला : "यहाँ आकर सबर भी होता हो !"

"और अपने घर में ?"

"घर की कौन कहे ?"

"भीगी बिल्ली बन जाते होगे ?"

"और चारा ही क्या है ?"

"सेठानी बड़ी तेज है ना ?"

"भगवान बचाए !"

"उसे भी थोड़ा-थोड़ा पीना सिखा दो, सेठजी ! सुधर जाएगी।"

"मुझे घर से निकलवाएगी, गौरी ! वह तड़के उठकर पूजा में बैठती है। और ठाकुर का चरणामृत लिए बिना पानी भी मुँह में नहीं देती।"

"और आप ? आप तो हम लोगों का चरणामृत लेते हैं। कैसे गति होगी आपकी ?"

सेठ ने उत्तर नहीं दिया। गौरी ने भी बात आगे नहीं बढ़ाई। गिलास में बाक़ी बचा मद गटक कर वह चली गई। कहती गई कि घुंघरू लेकर अभी आती है।

अकेली रह गई रेणु। उसके प्राण सूखने लगे। जैसे बिल्ली के सामने कबूतरी के। उठकर भागने की इच्छा हुई। किन्तु शरीर मानो मन-भर का हो गया था। उठा ही नहीं गया रेणु से। किन्तु बिल्ली ने कबूतरी को कुछ नहीं कहा। और फिर गौरी लौट आई घुँघरू लेकर। तब तक का एक-एक पल रेणु के लिए एक-एक युग-सा बीता था।

तबलची और हारमोनियम बजाने वाले भी आ गए। लगे एक ओर को बैठकर साज मिलाने। दोनों ने माँग-माँगकर एक-एक गिलास ह्विस्की ले ली। सिगरेट भी। पीते जाते थे और साज मिलाते जाते थे। एक-दूसरे की आँखों से आँखें मिलाकर। गर्दन मटका-मटका कर।

गौरी ने घुँघरू की जोड़ी सेठ के आगे पटक दी। कमरा घुँघरू के रणन से गूँज उठा। और तब गौरी ने अपना बाँया पाँव सेठ की जांघ पर जमा दिया। सेठ एक तोड़ा घुँघरू उठाकर बाँधने लगे। बँध गए तो गौरी ने दूसरा पाँव सेठ की जाँघ पर रख दिया। सेठ ने दूसरे में भी घुँघरू बाँध दिए और तब गौरी एक छलाँग मारकर मोमजामे पर जा खड़ी हुई। कमरा घुँघरू की

छूम-छनन से भर गया।

तबले वाले ने गर्दन हिलाकर थाप दी। हारमोनियम का स्वर कुछ ऊँचा हो गया। किन्तु गौरी ने नाचने के लिए पाँव नहीं उठाया। वह धम से रेणु के पास आ बैठी। और बोली : "प्यास बुझा ले, रेणु ! तुझे प्यासी देखकर मुझसे न नाचा जाएगा।"

रेणु ने दबी आवाज में कहा : "पानी पीऊँगी, गौरी !"

"अरी यह पानी ही तो है। बस मीठा मिला है इसमें। थोड़ी सेन्ट और थोड़ा-सा पीपरमैन्ट। बस।"

"नहीं भई ! मैं नहीं पीऊँगी।"

"तो फिर मैं जाती हूँ, भई ! तू जाने और तेरे सेठजी जानें। मुझसे यह हत्या नहीं होगी।"

गौरी तमक कर उठ खड़ी हुई। घुँघरू बजाती हुई। जैसे वे उसके क्रोध को ध्वनित कर रहे हों।

रेणु ने कातर आँखों से गौरी की ओर देखा। दया नहीं थी गौरी के मुख पर। रेणु ने चुपचाप गिलास उठा लिया। और गौरी ने बोतल खोल कर ड्रम्बुई ढाल दी। कनखियों से सेठ की ओर देखकर हँस रही थी गौरी। रेणु गिलास का पेय गटक गई। गला कुछ जल-सा गया। किन्तु स्वाद बुरा नहीं था। अच्छा ही लगा वह अंग्रेजी शरबत रेणु को। किन्तु गिलास में विष होता तो भी वह पी जाती। सेठ के साथ अकेली रहने के लिए वह तैयार नहीं थी।

गौरी नाचने लगी। जादू था कलमुँही के पाँवों में। घुँघरू गाना-सा गाने लगे। रेणु निष्पलक नेत्रों से देख रही थी। गौरी के पाँव का घात-प्रतिघात। और गौरी की गर्दन का घुमाव। और गौरी की बाहों का उतार-चढ़ाव। आँखें नाच रही थीं गौरी की। दूसरे क्षण रेणु यह भूल गई कि वह कहाँ बैठी है और वहाँ कौन-कौन और बैठे हैं।

गौरी नाचती रही। रेणु उसको निहारती रही। ऐसा नाच उसने देखा ही नहीं था कभी। सुना भर था कि शहर में लड़कियाँ नाचती हैं।

गौरी रुकी। पसीना-पसीना हो गई थी। उसने अपने गिलास में ह्विस्की ढाली और एक साँस में पूरा गिलास गटक गई। सेठ मुस्करा रहा था।

तब गौरी ने रेणु का गिलास भी भर दिया। अब की बार शरबत की मात्रा पहले से अधिक थी। रेणु ने विरोध नहीं किया। वह फिर उठाकर गटक गई अपना गिलास-भर पेय।

गौरी फिर नाचने लगी। और रेणु फिर उसको देखने लगी। कुछ क्षण व्यतीत हुए। रेणु को ऐसा लगने लगा जैसे घुँघरू उसके सिर के भीतर बज रहे हैं। चमक कर सिर उठाया रेणु ने। नहीं! घुँघरू तो गौरी के पाँव में बँधे थे! और गौरी उन्हें एक क्षण भी मौन नहीं होने दे रही थी।

फिर नाच देखने लगी रेणु। अब की बार उसे ऐसा लगा जैसे गौरी उसकी आँखों में नाच रही है। आँखों की पुतलियों के भीतर प्रवेश करके। रेणु ने सेठ की ओर देखा। वह भी उसकी पुतलियों में प्रवेश कर गया। तबले वाला भी। हारमोनियम बजाने वाला भी। और रेणु स्वयं मानो अन्तरिक्ष में उड़ी जा रही थी।

गौरी बैठ गई। थक कर। तबला मौन हो गया। हारमोनियम भी। किन्तु रेणु को अब भी ऐसा लगता रहा जैसे घुँघरू बोल रहे हैं, तबला और हारमोनियम बज रहे हैं। गौरी ने ड्रम्बुई का एक गिलास और भर कर रेणु के हाथ में दे दिया। रेणु उसे भी गटक गई। इतस्तत: किए बिना। जैसे उसने स्वयं माँग कर लिया हो वह पेय।

गौरी ने साजिन्दों को संकेत करके उठा दिया। वे अपना नक़द इनाम और चार-चार सिगरेट लेकर चले गये। गौरी ने अपना और सेठ का गिलास ह्विस्की से भर लिए। और दोनों उनको एक साँस में पी गए।

सहसा गौरी ने रेणु का मुख अपने हाथों में थाम कर उसके अधर चूम लिए। रेणु मुस्कराने लगी। बहकी-बहकी आँखों से गौरी की ओर देख कर। गौरी ने सेठ की ओर देख कर कहा: "क्यों, सेठ जी! है ना तैयार?"

सेठ मुस्कराकर बोला: "अभी और ठहर, गौरी! नशा खिल आने दे।"

"मेरा इनाम?"

सेठ ने दस-दस के कई नोट निकाल कर गौरी के हाथ पर रख दिये। गौरी ने इधर-उधर ताककर झट से वे अपने ब्लाउज में रख लिए और एक गिलास ह्विस्की तथा दस-बारह सिगरेट लेकर कमरे के बाहर हो गई।

चौथा परिच्छेद

अगले दिन रेणु अपने कमरे से बाहर नहीं निकली। उसका जी नहीं चाहता था कि कोई उसका मुख देखे। लाज और ग्लानि के मारे गली जा रही थी रेणु। बस चलता तो वह अपनी देह को नोंचकर फेंक देती। हाय रे भाग्य! क्या खेल दिखाया!! वह मित्तिर महाशय के पंजे से निकल भागी। समर उसकी देह का स्पर्श नहीं कर सका। बूटासिंह से उसने त्राण पा लिया। जीजा जी का अनवरत आमन्त्रण हार मान बैठा। केवल उस की मूक हठ के कारण। उस के हाथ पाँव मारे बिना ही। और अन्त में वह नष्ट हुई तो एक सर्वथा अपरिचित पुरुष के हाथों!! हाय रे कपाल!!!

तकिए में मुँह छुपा कर रोती रही रेणु। न नहाया, न खाया। और न किसी ने उस को नहाने खाने के लिये टोका। किसी ने खबर ही नहीं ली उसकी। जैसे वह उस बाड़ी में हो ही नहीं। कोई आकर उस के सिर पर हाथ फेर देता तो उस सिर में उबलता हुआ उत्कट आक्रोश उतर जाता। कोई उसके आँसू पोंछ देता तो वह भी अपने अवशिष्ट आँसू पी जाने का प्रयास करती। कोई उसके पास बैठकर संवेदना के दो शब्द कह देता तो वह भी उसके आगे अपना दुख रोकर दिल की भिड़ास निकाल लेती। किन्तु किसी ने उसकी ओर आँख उठा कर भी नहीं देखा।

उसका परिचय केवल रानी माँ और गौरी से था। रेणु को आशा थी कि उन दोनों में से कोई एक जनी अथवा वे दोनों ही, एक-एक करके अथवा अलग-अलग, उसके पास आकर उसे सान्त्वना देंगी। रानी माँ से वह भय मानती थी। किन्तु आज यदि रानी माँ उसके पास आकर उसे दो खरी-खोटी भी सुना जाती तो रेणु को अच्छा लगता। सान्त्वना मिल जाती उसको।

वह मान लेती कि किसी को उसका खयाल है। अवहेलना की अनुभूति से अभिभूत हो कर उसका मानस मर मिटने की अभीप्सा नहीं करता।

किन्तु साँझ तक न रानी माँ आई उसके पास, न गौरी ही। उन दोनों में बुरी तरह झगड़ा हुआ था। रानी माँ गला फाड़-फाड़ कर चिल्लाई थी। और गौरी को उसने अनेक अश्लील गालियाँ दी थीं। गौरी ने भी वार्ड-भर को सिर पर उठा लिया था। रेणु अपने कमरे में पड़ी-पड़ी सब सुनती रही। उसकी इच्छा ही नहीं हुई कि उठ कर वह महाभारत देख ले।

रानी माँ को न जाने कैसे पता चल गया था कि गौरी ने सेठ से कुछ रुपये ऐंठ लिए हैं। कितने रुपए ऐंठे हैं सो उसको ज्ञात नहीं था ठीक से। सुना था कि दस-दस के ढेर-सारे नोट थे। रानी माँ ने प्रातःकाल ही गौरी को बुला कर कहा :

"ओ गौरी ! ला निकाल वे नोट !"

गौरी ने भोली बनकर पूछा : "कौन से नोट, रानी माँ !"

"भोली मत बन, कलमुँही ! मुझको सब मालूम है। बता दे सेठ ने कितने रुपये दिए दिए हैं तुझे।"

"मुझे ! ! सेठ ने रुपये दिये हैं ! ! ! आपको किसने बहका दिया, रानी माँ !"

"मुझको बहकाएगा कौन ? मैं बाहर खड़ी सब कुछ देख रही थी। अपनी आँखों से। उसी समय तेरी गर्दन पकड़ कर निकलवा लेती। किन्तु घर में सेठ था। इसलिए मैं कुछ नहीं बोली।"

"उसी समय मेरा झाड़ा ले लेतीं तो आपका भरम मिट जाता और मुझ पर यह झूठा आरोप नहीं लगता।"

"देख, गौरी ! मैं जानती हूँ कि बातें बनाने में तेरी बराबरी कोई नहीं कर सकता। मैं तेरे मुँह लगना नहीं चाहती। चुपचाप वह रुपया मुझ को दे दे। नहीं तो...

"नहीं तो क्या ?"

"मुझे तेरे कमरे की तलाशी लेनी पड़ेगी।"

"तो बुला लीजिये ना पुलिस को।"

"मैं क्यों बुलाऊँ पुलिस को ? मैं तो स्वयं सौ थानेदारों की एक थानेदार हूँ।"

"तो जा कर देख लीजिए। वह कमरा पड़ा है।"

"बता क्यों नहीं देती कि कहाँ रक्खे हैं रुपये ?"

"अपने पेट में रख रक्खे हैं। डाक्टर को बुलवा कर ऑपरेशन करवा दीजिए मेरा। रुपए निकल आयेंगे।"

"तू बहुत बढ़-बढ़ कर बातें करने लगी, गौरी !"

"तो आपने कोई बात कही, रानी माँ ! एक तो कई घण्टे मेहनत करके उस गँवइ गाँव की छोरी को तैयार किया। उसके लिए शाबास देना तो दूर रहा, उल्टा मेरे सिर चोरी और लगा दी।"

"कोई चोरी करेगा तो चोर ही कहलाएगा। मुझको तो कोई चोर नहीं कहता ?"

"डाकू को चोर कहने से क्या लाभ ?"

रानी माँ उठकर गौरी की ओर दौड़ पड़ी। गौरी भी भाग खड़ी हुई। और फिर वे दोनों बाड़ी के चौक के चारों ओर कई चक्कर लगा गईं। गौरी रानी माँ की पकड़ में नहीं आई। बाड़ी की सारी लड़कियाँ अपने-अपने कमरों से निकल कर दरवाजों पर खड़ी यह काण्ड देख रही थीं। रानी माँ ने सब को आदेश दिया कि गौरी को पकड़ दें। किन्तु किसी लड़की का साहस नहीं हुआ। गौरी ने ललकार कर कह दिया था कि किसी ने उसको हाथ भी लगाया तो वह उस कलमुँही की नाक चबा जाएगी। अपनी नाक को किसी लड़की ने संकट में नहीं डाला। गौरी को वे सब भली-भाँति जानती थीं।

हार कर रानी माँ बैठ गई। बरामदे में ही। और फिर उसके मुख से अश्लील वाग्धारा का प्रपात प्रवाहित हो चला। गौरी की माँ, बहिन और न जाने किस-किस सम्बन्धी को लेकर मनमाना व्यभिचार किया रानी माँ ने। गौरी के सात जन्म और उसकी सात पीढ़ियाँ बखान दीं। गौरी को न जाने किस-किस जानवर की सन्तान बतलाया।

गौरी भी बरामदे के दूसरी ओर खड़ी एक की दो-दो सुना रही थी। रानी माँ मक्कार है, कुटनी है, बाघिन है। रानी माँ को किसी का नहाया-

"तभी तो उनके कहने से तूने मुझको मद पिला दिया।"

"कह तो दिया, रेणु ! मद मैंने तुझे नहीं पिलाया। मीठे पानी का तू मद कहे तो दूसरी बात है।"

"बातें मत बना, गौरी ! तूने सर्वनाश करवा दिया मेरा। मैंने तुझ पर विश्वास किया था। तूने मेरे विश्वास...

सहसा गौरी की मुख-भंगिमा बदल गई। वह भ्रूकुञ्चित करके बोली : "क्या कर दिया मैंने ?"

रेणु ने कहा : "तूने मुझको नष्ट कर दिया।"

"नष्ट मैंने नहीं किया। सेठ ने किया है। मेरे सिर क्यों होती है ? और तू इतनी भोली क्यों बनती है ?"

"भोली थी तभी तो मैं कल धोखा खा गई।"

"चलो छुट्टी मिली। यह धोखा तो तुझे खाना ही था। कल नहीं खाती तो और दो दिन पीछे खाती। बचकर कहाँ जाती ?"

रेणु निरुत्तर हो गई। ठीक ही कह रही थी गौरी। बचकर कहाँ जाती ? और फिर सहसा रेणु के अन्तर में विद्रोह जाग उठा। नहीं, नहीं ! वह बच जाती। मित्तिर महाशय से नहीं बची वह ? समर से नहीं बची ? और जीजा जी से भी बच गई। उसके होश-हवास दुरुस्त रहते तो किस प्रकार कोई उसको छू देता ? वह हाथ-पाँव पटकती, हाय-तोबा करती, भाग खड़ी होती। और नहीं तो काट लेती ! किन्तु गौरी ने उसको आशंकित होने का भी अवसर नहीं दिया। मीठी बन कर ठग लिया हरामजादी ने ! !

रेणु पीठ मोड़ कर बैठ गई। गौरी का मुँह देखने को जी नहीं चाहता था। काली-कलूटी का मुख। जैसा मुख वैसा ही दिल। काला-काला। मरी का मुँह नोंच लेने को जी चाहता था।

गौरी उठकर खड़ी हो गई और बोली : "मैं तो तुझसे विदा लेने आई थी, रेणु !"

रेणु ने पीठ नहीं मोड़ी। न कनखियों से ही गौरी को देखा। न मुख से एक शब्द कहा। गौरी चलकर दरवाजे के पास जा पहुँची। वहाँ रुक कर बोली : "एक ही दिन के साथ में मेरा दिल ले लिया कलमुँही ने ! यदि जानती

कि ऐसी बेपरीत है तो तुझसे परीत नहीं करती मैं। अपनी मान कर मदद की थी मरी की। और यह समझती है जैसे मैंने इसका घर लूट लिया। रेणु का क्या दोष ? जमाना ही बुरा है। जिसका भला करो, उसी के सामने बुरा बनो। अब मुझसे यह सब नहीं सहा जाता। अब तो मैं यहाँ से चली ही जाऊँगी। सब-कुछ छोड़कर। सन्यास ले लूँगी...

रेणु तड़प उठी। क्रोध नहीं टिक पाया रेणु का। गौरी पर तो वह जान देती थी। उसका अन्तर चीत्कार कर उठा : "गौरी चली गई तो तू क्या करेगी, रेणु !"

और रेणु ने मुख मोड़कर गौरी की ओर देखा। दरवाजे का परदा पकड़े खड़ी थी गौरी। रेणु को मुख मोड़ते देखकर वह जाने के लिए तैयार हो गई। रेणु ने भाग कर उसका हाथ पकड़ लिया। और गौरी को अपनी ओर खींच कर वह बोली : "ओ गौरी ! मुझे माफ कर दे ! तू जा मत !!"

गौरी ने तमक कर कहा : "तेरी एक-एक बात मेरी छाती में खटक रही है। तीर की तरह। मैं तुझसे नहीं बोलूँगी, हरामजादी !"

रेणु गौरी से लिपट कर रो पड़ी। गौरी के लिए अपनी हँसी दबाना कठिन हो रहा था। वह रेणु को साथ लेकर फिर गद्दे पर आ बैठी।

रेणु ने पूछा : "तू क्या सचमुच चली जाएगी, गौरी !"

गौरी ने गम्भीर बनकर उत्तर दिया : "हाँ ! सचमुच !"

"कहाँ जाएगी ?"

"जहाँ जी चाहेगा।"

"इस बाड़ी में नहीं रहेगी ?"

"नहीं।"

"क्यों ?"

"यहाँ से मेरा दाना-पानी उठ गया।"

"और मुझे तू यहीं छोड़ जाएगी, गौरी !"

"क्यूँ नहीं ? तू मेरी कौन लगती है ?"

रेणु ने झपटकर एक झटके में गौरी का ब्लाउज फाड़ डाला। फिर उसने मुँह बिचका कर गौरी की चीढ़ उतारी : "तू मेरी कौन लगती है !!"

गौरी खिलखिला.कर हँस पड़ी । उसने रेणु को अपने आलिंगन में बाँध लिया । और उसके गालों पर, अधरों पर, माथे पर तड़ातड़ अनेक चुम्बन अंकित कर दिए । रेणु विभोर हो गई । गौरी के हाथ अपने हाथों में लेकर बैठी रही वह । बोलने के लिए अब कुछ नहीं रह गया था उसके पास ।

रानी माँ ने कमरे में प्रवेश किया । पीछे-पीछे ननक था । रानी माँ ने गौरी से कहा : "ले सुन ले ननकू क्या कह रहा है ।"

गौरी ने आँखें नचा कर पूछा : "क्या कह रहा है ?"

ननकू बोला : "सेठ को माल पसंद नहीं आया ।"

"क्यूँ ? क्या कमी रह गई ?"

"सेठ का मन नहीं भरा । उनका खयाल है कि माल फरेश नहीं है ।"

"तो कैसा है ?"

"मुर्दा है मुर्दा । सेठ ने मुर्दा नहीं माँगा था । मुर्दे तो न जाने उनको कितने मिल जाएँ । रास्ता चलते-चलते । कौड़ी के दाम ।"

"तो सेठ उठकर क्यों नहीं चल दिया ? हमारा माल हमारे घर में रह जाता । सेठ के सिर तो नहीं मढ़ देते हम ?"

"सेठ शरीफ आदमी हैं, गौरी ! घर में चले ही आए तो किसी का अपमान करना उसके बस का नहीं रहा । उनकी आदत मैं जानता हूँ ।"

"बहुत देखे हैं ऐसे शरीफ !"

रानी माँ को ताव आ गया । गौरी को फटकार कर बोली : "तेरे मुँह में आग लगे, हरामजादी ! पुराने गाहक को गाली निकालती है। सेठ तो पारखी आदमी है । एक नम्बर का । उसका परखा हुआ माल कभी घाटे का नहीं निकला । जिसको सेठ ने पास कर दिया वह टकसाल बन गई । तुझे भी तो सेठ ने ही पास किया था । अब तू बाँटे नहीं बँटती । जिसको देखो गौरी-गौरी की माला जपता हुआ आता है। और गौरी-गौरी जपता चला जाता है ।"

गौरी ने नरम पड़ कर कहा : "तो, रानी माँ ! मैंने क्या कसर छोड़ दी ? मैंने क्या अपना काम नहीं किया ?"

"ओ हो ! मैं कब कहती हूँ कि काम नहीं किया ? मैंने तो अपनी आँखों से सब-कुछ देखा था । तूने गँवइ गाँव की छोरी को रम्भा बना कर खड़ा

कर दिया था। किन्तु उसे सिखाया-पढ़ाया कुछ भी नहीं !"

"सिखाया-पढ़ाया क्यों नहीं ? सब-कुछ सिखाया-पढ़ाया था।"

"अपना सिर सिखाया-पढ़ाया था ! ! सेठ क्या झूठ बोलता है ? उसके रुपए खा गई, और ऊपर से उसको झूठा भी बनाती है।"

"मैं एक बार कह चुकी हूँ, रानी माँ ! सेठ की कानी कौड़ी भी मैंने नहीं ली। और रेणु को आपने ही देखकर पास किया था।"

"हाँ, मैं उसे साथ लेकर सोई थी ना, हरामजादी ! उसको कुछ भी नहीं सिखाया तू ने !"

"अरे तो, रानी माँ ! कल तो वह आई है। एक की दो वह जानती नहीं। मैं चार घड़ी में उसको चन्दाबाई कैसे बना देती ? मेरे पास क्या कोई जादू-मन्तर है ?"

"तेरा सिर फिर गया है, कलमुँही ! जबान लड़ाती है ! !"

फिर रानी माँ ने ननकू से कहा : "सेठ से कह दे कि रेणु जब तक तैयार नहीं हो जाएगी तब तक उसे कोई और नहीं छूएगा। सेठ दोबारा आएगा तब तक वह फरेश की फरेश ही रहेगी।"

और फिर वह गौरी से बोली : "देख, कान खोलकर सुन ले, गौरी ! रेणु को सब सिखा दे। सेठ दोबारा आए तो उसके पल्ले मुर्दा नहीं पड़ने पाए। नहीं तो कलमुँही का मुँह नोच लूँगी।"

गौरी कुछ कहना चाहती थी कि रानी माँ ने उसके मुख पर एक चपत लगा दी। प्यार की चपत। और फिर रानी माँ ननकू को ले कर चली गई। गौरी हँसने लगी। बोली : "रानी माँ की तो आदत है। जब देखो तब पों-पों।"

रेणु अपने विषय में यह सब वादानुवाद सुनकर व्याकुल हो उठी थी। वह गौरी के गले में बाहें डाल कर बोली : "बता तो, गौरी ! मैं क्या करूँ ?"

गौरी ने पूछा : "तू क्या सचमुच फरेश है ?"

"फरेश माने ?"

"कभी किसी पुरुष...

रेणु ने गर्दन झुका ली। गौरी ने उस को झकझोर कर कहा :

"बोलती क्यूँ नहीं, कलमुँही !"

रेणु बोली : "मुझे तो कभी किसी ने एक अँगुली से भी नहीं छुआ था।"

"तब तो, भई ! सचमुच जुलम हो गया। मैं तो समझी थी कि..."

"क्या समझी थी ?"

"अच्छा, रेणु ! तेरा ब्याह हो चुका क्या ?"

"हाँ, ब्याह तो हो चुका। क्यों ?"

"ससुराल में कितने दिन रही ?"

"एक दिन भी नहीं। जिस दिन वहाँ गई थी उसी दिन भाग आई।"

"अच्छा ! ! तब तो तू बड़ी उस्ताद है। चल अपनी कहानी सुना दे ना।"

"सुनेगी ?

"हाँ, सुनूँगी। लम्बी तो नहीं है ?"

"लम्बी हो तो ?"

"लम्बी कहानी से मेरा जी ऊब उठता है।"

"क्यों ?"

"अरी कितनी कहानियाँ तो सुन चुकी हूँ, रेणु ! सब की सब एक-सी ही तो होती हैं। अब बार-बार उसे कोई क्या सुने ?"

"ओ ! तो तू कहानियाँ सुन-सुन कर बूढ़ी हो गई है, गौरी !"

"और नहीं तो आज की हूँ मैं ? दस बरस हो गए।"

"कहाँ ?"

"यहीं। इसी बाड़ी में। जने कितनी आईं, कितनी चली गईं। एक मुझ से ही नहीं जाया जाता।"

"और जनी क्यों चली गईं ?"

"रानी माँ ने टिकने ही नहीं दिया। लड़की पुरानी हुई और रानी माँ ने निकाला। रानी माँ तो फरेश का ही व्यापार करती हैं।"

"तुझे नहीं निकाला ?"

"मेरी दूसरी बात है। मेरे बिना रानी माँ की दूकान ही बन्द हो जाए।"

"क्यों ? तुझ में ऐसी क्या करामात है ?"

"मेरे बिना न नई लड़की पुरानी हो, और न रानी माँ की थैली भरे।"

"थैली में तेरा भी साझा है ना ?"

"एक अधेली भी नहीं। हाँ, गाहकों से कुछ-न-कुछ जरूर ऐंठ लेती हूँ। सो क्या जोड़ने के लिए ? मुझे पचास चीजें चाहिए। रानी माँ तो बड़ी कंजूस हैं।"

रेणु चुप हो गई। गौरी ने घुटना मार कर कहा : "बोलती क्यों नहीं, कलमुँही ! चुप क्यों हो गई ?"

रेणु ने गम्भीर बन कर कहा : "गौरी ! तू अच्छा काम नहीं करती।"

"क्यूँ-ऊं-ऊं ! क्या बुरा काम करती हूँ मैं ?"

"बेचारी लड़कियों का सत्यानाश करवा देती है।"

"सत्यानाश तो रानी माँ करवाती हैं। मैं क्या लड़कियाँ लाती हूँ ? हाँ वे आ जाती हैं तो उनका जीना दूभर नहीं होने देती।"

"बड़ा उपकार करती है ना, हरामजादी !"

"और नहीं तो क्या करूँ ? तू ही बता, रेणु !"

"नई लड़की आए तो क्या तू उसे समझा नहीं सकती कि उसका सर्वनाश होने वाला है ?"

"सब की सब तेरे जैसी बुद्धू आती हैं क्या ? और बुद्धू भी आएँ तो मेरे बतलाने से क्या वे बच जाएँगी ?"

"क्यूँ नहीं बच जाएँगी ?"

"तू ही बता कैसे बच सकती हैं ?"

"यहाँ से भाग कर।"

"भाग कर जाएँगी कहाँ ? और किसी गन्दे स्थान में जा फंसेगी। और स्थानों से तो यहाँ लाख अच्छा है।"

"मैं नहीं मानती।"

"तू जानती ही नहीं ! तेरे कहने से क्या होता है ?"

"ऊँ...हूँ..."

"तो तू भाग कर देख ले। बोल कर दूँ तेरे भागने का बंदोबस्त ? सारा संसार पड़ा है तेरे सामने। कहीं ठौर नहीं मिले तो फिर यहीं आ जाइयो।"

रेणु ने उत्तर नहीं दिया। सारा संसार फिर गया उसकी आँखों में।

कहीं भी ठौर नहीं दिखाई दी। एक यहीं पर ठौर दीख पड़ती थी। यहाँ गौरी थी, इसलिए। गौरी को छोड़कर वह नहीं जा सकती थी।

गौरी ने रेणु की नाक पकड़ कर प्यार से कहा : "चल उठ, कलमुँही! नहा-खा ले।"

रेणु उठकर उसके साथ हो ली। चौबीस घण्टे में ही सयानी हो गई थी रेणु।

: २ :

रेणु ने जी लगा लिया जदु बाजार की बाड़ी में। गौरी ने उसको यही गुरुमन्त्र दिया था। और बीते दिनों को भुलाने लगी रेणु। कृष्णनगर में अपने घर को भूलने लगी वह। बाबा को, भाइयों को, भाभियों को भूलने लगी। मित्तिर महाशय को भूल गई। और भूल गई पूरबी तथा समर को। बूटासिंह उसके मन से चला गया। और चले गए पारुल दीदी तथा जीजा जी। अविस्मृति के अन्धकूप में डूबकर सब-के-सब लुप्त हो गए।

एक दिन गौरी ने उसकी रामकहानी भी सुन ली। गौरी के मत में कहानी कुछ नई नहीं थी। कुछेक अध्यायों का ही हेर-फेर हो गया था। कोई परिच्छेद पीछे, कोई आगे। किन्तु सब मिलाकर औरों की कहानी जैसी ही थी रेणु की कहानी। रेणु के मन से काँटा-सा निकल गया। वह तो समझे बैठी थी कि उसके साथ ही कोई अपूर्व अत्याचार हुआ है। आँसुओं के सागर का समाचार सुनकर रेणु के अपने आँसुओं की चार बूँदे शरमा गईं।

और गौरी ने उसे अपनी विद्या भी दे दी। एक-एक करके सारे गुर समझा दिए। केवल अपना मन उसे नहीं दे सकी गौरी। बाह्य चापल्य के पीछे कितना अटल था वह मन! कितना दुर्गम और दुर्भेद्य!! रेणु के पास वह मन होता तो वह भी किनारा पा जाती। गौरी ने पा लिया था किनारा। रेणु का अन्तर गवाही देता था। गौरी को कभी डूबते ही नहीं देखा था रेणु ने।

पानी कितना ही चढ़ा हो, गौरी उसके ऊपर आ जाती थी। हँसती-हँसती। पानी पर पंकज की नाईं। पानी की एक बूँद नहीं रह पाती थी उस की काया पर। रेणु की समझ में ही नहीं आया कि गौरी किस प्रकार पानी

से पार पाती है। उसका अपना मन तो मानो ओस की बूँद था। ढल-ढल जाता था। बार-बार। उसके न चाहने पर भी। गौरी की समूची शिक्षा हृदयङ्गम कर लेने पर भी।

गौरी की बतलाई हुई कुछ बातें रेणु के बड़े काम आई। बाह्य दृष्टि से। गौरी ने उसको समझाया था कि वह वेश्या नहीं है, प्राइवेट है। रेणु ने पूछा था : "वेश्या और प्राइवेट में क्या अन्तर है, गौरी !"

गौरी ने कहा था : "वेश्या का दरवाजा सब समय खुला रहता है। सब के लिए। भद्र लोग और बदमाश, चोर और शाह, जिसका भी जी जिस समय चाहे, उसी समय खटखटा ले वह दरवाजा। बस जेब में पैसे होने चाहिएँ।"

"और प्राइवेट का दरवाजा ?"

"उसके पास अपनी इच्छा से कोई नहीं आता। चुने हुए लोगों को लाया जाता है उसके पास। सबके-सब भद्र लोग होते हैं। और सब-के-सब शाह। उनके कपड़े उतरवा लो। वे हंगामा नहीं करते। इसलिए नहीं कि उनको कुछ बुरा नहीं लगता। इसलिए कि वे समाज से डरते हैं। शराफत इसी का नाम है। समाज से डरना। समझी ?"

"वेश्याएँ कहाँ रहती हैं, गौरी !"

"सोनागाछी में। जदुबाज़ार में भी बहुत हैं। अनेक स्थान पर रहती हैं।"

"और प्राइवेट ?"

"वे भी अनेक स्थान पर। बालीगंज में बहुत हैं। टालीगंज में भी। बड़ा बाजार में भी।"

"तो क्या सारा शहर...

"अरी व्यवसायी लोग सभी स्थान पर रहते हैं। बस किसी की हाट छोटी है, किसी की बड़ी। किसी का बोर्ड काला है, किसी का सुनहला। छोटी दूकान वाले खुले आम बैठते हैं। बड़ी दूकान वाले बाड़ी के भीतर। बाहर दरबान बैठा कर।"

"मुझे तो मरदों से डर लगता है, गौरी !"

"इसीलिए कि तू उनको समझी नहीं अभी तक। उनकी चाबी घुमाना सीखी कि तेरा डर गया।"

"तू जानती है उनकी चाबी घुमाना ?"

"और नहीं तो ऐसे ही नचाती हूँ नित-नए लोग ?"

"तू करती क्या है ?"

"अरी आँख की परख चाहिए। और चाहिए दिल का हियाव। मरद को हारमोनियम की नाई बजा लो। तुम चाहो जैसा स्वर निकाल देगा बेचारा।"

"सब-के-सब मरद एक-से तो नहीं होते ?"

"मैं कब कहती हूँ कि एक-से होते हैं ? कोई-कोई तो बड़े दब्बू होते हैं। और कोई-कोई बड़े मिजाजी।"

"तू तो सबको बस में कर लेती है।"

"दब्बू को देखती हूँ तो धर दबाती हूँ। उसको कमरे में बैठाकर स्वयं चक्कर काटती रहती हूँ। कभी बाहर, कभी भीतर। जैसे मुझे फुरसत ही नहीं उस जैसों के लिए।"

"बात नहीं करती उसके साथ ?"

"बैठकर बात नहीं करती। वह कुछ पूछता है तो छोटा-सा जवाब दे देती हूँ।"

"उठकर नहीं चला जाता वह ?"

"नहीं, बिल्कुल नहीं। बस जम जाता है। और बार-बार आता है। समझता है पानीदार छोरी से पाला पड़ा है। दब्बू तो पानीदार के पाँव धो-धोकर पीने के लिए तैयार रहता है, रेणु !"

रेणु हँसने लगी थी। बोली थी : "तू भी क्या कलगोरख है, कलमुँही !"

गौरी ने कहा था : "मेरा पेशा ही ऐसा है। देह बेचती हूँ। दिल किस-किस से उलझाऊँ ?"

"रानी माँ से सीखी होंगी सब बातें ?"

"रानी माँ क्या सिखाएँगी। गौरी तो स्वयं उस्ताद है। सौ उस्तादों की एक उस्ताद। ले पाँव छू ले मेरे।"

गौरी मरदों की नाई मूँछों पर ताव दे रही थी। रेणु ने पाठ आगे बढ़ाया था : "मिजाजी पुरुष के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए ?"

गौरी ने कहा था : "कोई-कोई ऐसा आ जाता है जैसे वह सारे संसार

का स्वामी हो। मिजाज तोलों में तुलता है।"

"उससे तू कैसे निपटती है?"

"बस ऐसी बन जाती हूँ जैसे मिसरी की डली। उसको विश्वास दिला देती हूँ कि उस जैसा बाँका भगवान ने बनाया ही नहीं दूसरा। और उस जैसा छैला न गौरी को पहिले कभी मिला, न फिर मिलेगा।"

"मिज़ाजी को देखकर मिज़ाज नहीं होता।"

"मिज़ाज हो तो समझ लो कि तुम भी हारमोनियम हो। बजाना जानती हो। सुर निकालना नहीं सीखीं।"

"अच्छा! आगे कह, कलमुँही!"

"बस उसके गले में बाहें डाल दो। वह रूठे, तुम मनाओ। वह बिगड़े, तुम हँसती रहो। कान में प्यार-परीत की चार बातें कुनमुना दो। मुँह-से मुँह सटाकर। साला मोम हो जाएगा।"

"हट! मुझ से नहीं होगा।"

"होगा क्यों नहीं? थोड़े दिन गौरी की शागिर्दी कर ले। फिर तो तू बड़ों-बड़ों के कान काटेगी, कलमुँही!"

"कान काटना चाहता कौन है?"

"तो बस राम-राम सत्त! रानी माँ तुझे निकालकर सड़क पर खड़ा कर देंगी।"

"रानी माँ ने मुझे निकाला तो तू मेरे साथ चलेगी ना, गौरी!"

"मुझे निकाला तो तुझे अपने साथ ले चलूँगी, रेणु!"

"बड़ी स्वार्थिन है!"

"और नहीं तो यहाँ धरम-करम कमाने आई हूँ? परलोक तो बिगड़ गया। अब यह लोक भी बिगाड़ लूँ? और तेरे कहने से? तू बड़ी आई मेरी माँ की जाई!!"

रेणु ने किन्तु निश्चय कर लिया था कि होश-हवास ठिकाने रहते वह फिर कभी किसी पुरुष का हाथ अपनी देह पर नहीं पड़ने देगी। भाग्य में जो लिखा है वही होगा। वह सब झेल लेगी। जो कुछ भी झेलने का प्रसंग आएगा। रानी माँ घर से निकाल देंगी। निकाल दें। उस दिन कोई दूसरा

रास्ता निकल आएगा। किन्तु तब तक वह अपनी हठ से नहीं हटेगी।

कोई-न-कोई दलाल नित-नया रँगरूट ले आता था। रेणु के रूप में ऐसी मोहिनी थी कि देखने वाला उसके पास बैठने के लिए व्याकुल हो जाता था। तब रानी माँ रेणु को कमरे के बाहर भेज देती थी। और कमरे का द्वार बन्द करके रँगरूट के साथ मोल-भाव करने लग जाती थी।

रेणु दरवाजे के पास कान लगाकर सब सुनती रहती थी। रानी माँ एक रात के सौ रुपए माँगती थी। रँगरूट इधर-उधर करता था तो रानी माँ उठकर कमरे का दरवाजा खोल देती थी। कोई-कोई रँगरूट कहता था : "मुझे सारी रात तो रहना नहीं। दो-चार घण्टे ही रहूँगा।"

रानी माँ सिर हिलाकर कहती थी : "मेरी बेटी वेश्या तो है नहीं जो एक आए और एक जाए। एक रात में एक ही रहता है उसके पास। चाहे वह दो मिनट ठहरे, चाहे दिन निकाल दे। वह उसकी मरजी। रेट में कमी नहीं हो सकती। बाजार बिगड़ जाएगा।"

यदि कोई रँगरूट असमर्थता प्रकट करता तो रानी माँ कह देती : "कोई बात नहीं। आपका अपना घर है। फिर आ जाना किसी दिन। हाथ में पूरे रुपए हों तब आ जाना।"

रँगरूट मान जाता था तो रानी माँ रेणु को पुकारती थी। बड़े मीठे स्वर में। जैसे उसके अपने पेट की बेटी हो रेणु। और रेणु रँगरूट को लेकर अपने कमरे मे चली जाती थी।

रानी माँ का कायदा था कि जाने पहिचाने और पुराने गाहक को नई लड़की के पास नहीं बैठाती थीं। हाँ, सेठ की तरह कोई पुराना ग्राहक फरेश का शौकीन होता तो दूसरी बात थी। किन्तु फरेश तो साल छः महीने में एक बार आती थी। अन्यथा जब तक लड़की खुल न जाए और अदब-कायदा न सीख जाए, तब तक नए और नावाकिफ लोग ही उसके सिर मढे जाते थे। और इस प्रकार दोहरा लाभ रहता था।

एक तो अनाड़ी लड़की को भी नए लोगों से फीस अधिक मिलती थी। और दूसरे नई लड़की जल्दी काबू में आ जाती थी। लड़की यदि शिकायत करती थी तो उससे कह दिया जाता था कि बँधा बाबू चाहती है तो ठीक-

ठीक व्यवहार सीखना पड़ेगा। और हरेक लड़की हार कर एक-न-एक दिन घुटने टेक देती थी। लड़की एक बार खुली कि खुली। फिर क्या नया और क्या पुराना। सब ग्राहक एक समान चल सकते थे।

किन्तु रानी माँ की थैली भरती थी उसी वक्त जबकि लड़की सब कुछ सीख पढ़ कर किसी न किसी बाबू को अपना लट्टू बना लेती थी। फिर रानी माँ उससे लड़की के लिए गहने माँगती थी और बीसियों अन्य उपायों से रुपये ऐंठती थी। और नई लड़कियों को सिखाने-पढ़ाने का भार था गौरी के सिर पर। इसीलिए रानी माँ गौरी को इतना मानती थी, और उससे लड़कर भी दब जाती थी।

रेणु के रंग-ढंग देख कर पहले पहल तो रानी माँ को चिन्ता नहीं हुई। मन में आशा थी कि वह भी एक दिन सध जाएगी। रानी माँ का अनुभव था कि पहले-पहल तो सभी नई लड़कियाँ ऐसे ही हठ किया करती हैं। न जाने रानी माँ ने कितनी नई-नवेलियों को पुराना किया था। ऐसी-ऐसी नई लड़कियों से पाला पड़ा था जो अपरिचित पुरुष के सामने पड़ते ही काँपने लग जाती थीं और आँसू बन कर बैठ जाती थीं। किन्तु एक दिन सबकी सब रास्ते पर आ गई थीं।

सब ने शराब पीना सीखा था। सब सिगरेट का धुआँ उड़ाने लगी थीं। और सब ने अपना-अपना बाबू पकड़ कर स्वयं रँग-रेलियाँ मनाई थीं और रानी माँ की थैली भरी थी। बाबू को फाँस कर उसका घरबार बिकवा देना ही रानी माँ का एकमात्र उद्देश्य होता था। जहाँ बाबू के टके पूरे हुए कि रानी माँ ने उसे टरकाया। नीचे नेपाली दरबान से कह देती थी कि वह फलाने बाबू को सीढ़ियाँ न चढ़ने दे। और लड़की किसी और शिकार की ताक में बैठ जाती थी।

रेणु की भला क्या औक़ात थी रानी माँ के सामने? गँवइ गाँव की छोकरी चार दिन में सीधी हो जायेगी। किन्तु रेणु ने रानी माँ की स्कीम ही फेल कर दी। वह गौरी की पढ़ाई पट्टी को एकदम भूल गई। इसलिए रेणु के पास कोई बाबू नहीं टिका। जो एक बार आया उसी ने लौटने का नाम नहीं लिया।

कोई टिकता भी कैसे ? रेणु का व्यवहार ही ऐसा था। शीतल, उदासीन, अवहेलनापूर्ण। नवागत पुरुष के साथ नपा-तुला आचरण था उसका। वह जो प्रश्न पूछता उसका परिमित सा उत्तर देती। ऐसे स्वर में कि दूसरा प्रश्न पूछने की किसी को प्रेरणा ही नहीं मिले। कोई मद पीने का अनुरोध करता तो वह कह देती कि डाक्टर ने मना किया हुआ है। सिगरेट पीने के लिए कहा जाता तो वह उत्तर देती कि वह गाना सीख रही है और सिगरेट से गला खराब होने का भय है। कोई खाने की चीज मँगाकर देता तो वह लेकर एक ओर रख देती। कह देती कि बेवक्त खाने से उसकी भूख नष्ट हो जाती है और बेवक्त नींद आने लग जाती है।

फिर भी बार-बार, प्राय: नित्य ही, रेणु को एक अग्नि-परीक्षा देनी पड़ती थी। आने वाला शराब पीकर और उसके पास बैठ कर मतवाला हो जाता था। उस के हाथ उठने लगते थे। रेणु सशंक-सी होकर कहती थी : "देखते नहीं दरवाजा खुला है ? कोई देखेगा तो क्या कहेगा ?"

आने वाला सुझाव देता था : "तो दरवाजा बन्द कर दो।"

रेणु कहती थी : "अभी क्या जल्दी है, बाबू ! अभी तो आप आए हैं। बैठिए, अभी और बैठिए। कुछ और खाइए पीइए।"

और रेणु उसके गिलास में हठ करके अधिक मद ढाल देती थी। कइयों को तो पी-पीकर मतली हो जाती थी और वे वैसे ही चले जाते थे। कोई-कोई सो जाते थे। रेणु की जान बच जाती थी।

यदि कोई नहीं मानता था तो रेणु चुपचाप उठ कर दरवाजा बन्द कर देती थी। और फिर बाबू के पाँव पकड़ कर कहती थी : "मैं अपकी बहिन के समान हूँ, बाबू ! भगवान के लिए मेरी इज्जत मत लो। आप से दया की भीख माँगती हूँ। सोच लेना रुपए दान में दे दिये आपने। या आप की जेब कट गई। रुपए के जोर पर मेरी आबरू मत लो, बाबू ! मैं भले घर की बेटी हूँ। मुसीबत की मारी यहाँ आ फँसी।"

कोई-कोई बाबू पिघल जाते थे औ रेणु की अनुनय-विनय सुनकर चुप-चाप चले जाते थे। उनमें से कुछ सहृदय लोग रेणु को कुछ रुपए भी देना चाहते थे। रेणु कह देती थी : "आपकी दया से मुझे पेट भरने को रोटी

मिल जाती है। तन ढकने को कपड़ा भी मिल जाता है। और मुझे कुछ नहीं चाहिए। क्या करूँगी आपका रुपया लेकर? किसी अच्छे काम में लगा देना, बाबू! दे देना किसी दीन-दुखिया को।"

कोई-कोई रेणु की कहानी सुनना चाहते थे। रेणु कहती थी :

"क्या करेंगे मेरी कहानी सुनकर? और कितनी-सी है मेरी कहानी? आपने जो कुछ अभी अपनी आँखों से देखा है वही तो मेरी कहानी है। इसके पहिले का जीवन तो सपना था। अब नहीं रहा। सपने की बातें सुनने-सुनाने से क्या आता-जाता है, बाबू! मन ही दुखी होगा। आपका। मेरा। वह सब मत पूछिए, बाबू!"

कोई-कोई उसकी सहायता करना चाहते थे। कहने लगते थे कि रेणु यदि चाहे तो वह उस जीवन से बाहर निकल सकती है। रेणु सिर हिलाकर कहती थी : "अब तो मैं काजल की कोठरी में गिर गई हूँ। काली हो गई हूँ, बाबू! आप भी क्यों अपने कपड़े काले करें। मेरा भाग्य था। मेरे आगे आ गया। अपना-अपना भाग्य, अपना-अपना भोग। आप मुफ्त में अपना मन मैला मत करें। आप क्यों झूठ-मूठ हैरान हों? अब भगवान ही यहाँ से मेरा उद्धार करेंगे।"

किन्तु बहुत बार ऐसे लोग भी आ जाते थे जो नशे में चूर होकर अथवा अपने क्रूर स्वभाव के वशीभूत, रेणु की प्रथम अनुनय ही अस्वीकार कर देते थे। उनका एक ही तर्क होता था : उन्होंने रुपया देकर रात भर के लिए रेणु की देह खरीदी है, विनिमय में वे तृप्तिलाभ किए बिना नहीं टलेंगे। तब रेणु बाघिन की नाईं उठ कर खड़ी हो जाती थी। क्रोध से नेत्र विस्फारित करके। उसके नथुने फूल जाते थे। स्वर काँपने लग जाता था। वह दृप्त स्वर में कहती थी : "मैंने तो तुम्हारी एक पाई भी नहीं ली। जिसने तुमसे कुछ लिया है उसके आगे जाकर अपना रोना रोओ। मेरी देह पर तुम्हारा कोई अधिकार नहीं है।"

यदि कोई बलात्कार करने पर तुल जाता तो रेणु उसे ललकारती थी : "सावधान! मेरे मुँह में दाँत हैं। अँगुलियों में नाखून हैं। कण्ठ में क्रन्दन भी है। मैं काटूँगी। नोचूँगी। हो-हल्ला करूँगी। आप के लिए बहुत बुरा होगा।

मेरा कुछ नहीं बिगड़ेगा। मैं तो वेश्या हूँ। आप भद्र आदमी हैं, बाबू ! अपनी आन से मत गिरो।"

और एक भी माई का लाल ऐसा नहीं निकला जो उस चण्डी की विकराल मुद्रा देखकर उसके हठ से खेल जाता। उस का मान-मर्दन करने का बीड़ा ही नहीं उठाया किसी ने।

अधिकतर लोग रानी माँ के पास जाकर शिकायत करते थे। नरम लोग भी। गरम लोग भी।

नरम लोग कहते थे : "लड़की नादान है। भद्र घर की दिखाई देती है। इससे यह पेशा करवाना अनुचित है। इसके ऊपर अत्याचार नहीं होना चाहिए।"

रानी माँ त्यौरी चढ़ाकर उत्तर देती थीं : "अत्याचार मैंने नहीं किया उसके ऊपर। मैंने तो उसको रास्ते पर से उठाकर महल में बिठाया है। अत्याचार किया है उन्होंने जिन्होंने इस को जन्म दिया। और वेश्याएँ क्या भगवान के घर से अलग बनकर उतरती हैं ? सभी स्त्रियाँ तो वेश्याएँ बन सकती हैं। सबकी-सब हैं ही वेश्याएँ। कोई चोरी-छुपे, कोई उजागर। कोई घर के भीतर, कोई घर के बाहर। इसी में क्या माँ काली ने प्रवेश किया है ?"

कोई तर्क करने पर तुल जाता था तो रानी माँ भी अड़ जाती थी। जुगुप्सा से मुँह मटका कर कहती थी : "बड़ी-बड़ी हठीलियाँ देखी हैं मैंने ! अपने-आपको सीता-सावित्री का अवतार समझने वाली। बस एक बार चसका पड़ जाए। इस्पात का मोम बन जाता है। मैंने आँखें मूँद कर पचास बरस नहीं बिताए, बाबू ! दुनिया देखी है। इन आँखों से।"

तर्क से तर्क कट सकता था। रानी माँ के अनुभव से कौन लौहा लेता ?

रेणु खड़ी-खड़ी सब सुनती रहती थी। न जाने उसके अन्तर में क्या था जो मौन भाव से रानी माँ की चुनौती स्वीकार कर लेती थी। वह अपने-आपसे कहती थी : "रानी माँ ने बहुत देखी हैं। माना। किन्तु रेणु से पहिले-पहल पाला पड़ा है इनका। रेणु इनको छठी का दूध याद दिला देगी।"

दूसरी ओर, तर्क करने वाले नरम आदमी को निरुत्तर हुआ देख कर

रानी माँ स्वयं भी नरम पड़ जाती थी। स्वर में मिसरी घोल कर कहती थी : "रेणु के पकने में अभी देर है, बाबू ! पके जब देख लेना कि रानी माँ भूठ नहीं बोलती। कलकत्ते भर की प्राइवेट इसके सामने पानी भरेंगी। बड़े-बड़े बाबू इसके पाँव धो-धो कर पीएँगे। तब तक तुम धीरज धरो। और चलो, तुमको पकी-पकाई चीज दे देती हूँ। दो-चार रुपए कम दे देना। मेरे घर में आकर सूखे लौट गए तो मेरा जी दुख पाएगा।"

बहुत से नरम लोग बुढ़िया के जाल में फँस जाते और रुपयों की एक नई गड्डी लेकर रानी माँ उनको दूसरी लड़कियों के कमरों में ठेल देती थी।

गरम लोगों से निपटने में भी निपुण थी रानी माँ। उनको बकते-भकते देखकर रानी माँ अपना पारा भी एक दम सौ डिगरी पर चढ़ा लेती थी। और आँखे निकाल कर, गर्दन हिलाती हुई, तर्जनी का ताण्डव दिखा कर कहती थी : "क्यों हल्ला कर रहे हो जी !! मछली बाजार है, ना ट्राम रास्ता ? भले आदमियों के घर में इस प्रकार गला नहीं फाड़ा जाता।"

कोई तुनक-मिजाज कह बैठता था : "ओ ! बड़ा भला घर है ना ! इन सब कमरों के भीतर क्या हो रहा है ?"

रानी माँ उत्तर देती थी : "जो सारी दुनिया में होता आया। तेरे घर में नहीं होता ? नहीं होता तो तू कहाँ से चला आया जवानी बिखेरता हुआ ? अपनी अम्मा से पूछ ले जाकर। बड़ा आया उपदेश देने वाला।"

रानी माँ के नौकर इधर-उधर से जमा हो जाते थे। संकेत होते ही वे गरम आदमी की गर्दन दबा सकते थे। किन्तु गर्दन दबाने की नौबत नहीं आती थी कभी। नौकरों को तत्पर देखकर वह ढीला हो जाता था। भीतर-ही-भीतर। बाहर से कह सकता था : "रुपए अण्टी में लगा लिए और ऊपर से धत्ता बता रही है। रुपए क्या हराम में आते हैं ?"

रानी माँ कहती थी : "रुपए ले लिए तो क्या कमरा नहीं दिया तुझे ? और लड़की नहीं दी ? लड़की को बस में करना नहीं जानता तो यहाँ चला आया किस बिरते पर ? मेरा घर क्या हीजड़ों की धर्मशाला है ? लो सुनो।"

बाबू रेणु की ओर अंगुली उठाकर पूछता था : "यह लड़की है ?"

रानी माँ भी पूछती थी : "और नहीं तो ऊँट है ?"

"बाघिन है, बाघिन !"

"तो भगवान का शुकर मना तू बच गया। बाघिन काट लेती तो घर जाकर माँ का दूध कौन पीता ? मिट्टी की पुतली से काम नहीं पड़ा, और चला आया मेरी रेणु से खेलने ! !"

साथ ही रानी माँ रेणु को पुचकार कर कहती थी : "जा, बेटी रेणु ! जा ! तू अपने कमरे में चली जा। क्यों सुनती है तू रास्ता चलतों की बातें ?"

रेणु चुपचाप अपने कमरे में जाकर बैठ जाती थी। जान बची, लाखों पाए। किन्तु मन-ही-मन वह रानी माँ का लोहा मानने लगी थी। क्या बला का जीवट था रानी माँ में ? कैसी विशाल बुद्धि ! अकेली ही सौ मरदों के कान काट लेती थी रानी माँ।

बाबू चले जाते थे तब रानी माँ रेणु के ऊपर बरसती थी। खूब खरी-खोटी सुनाती और फिर ताल ठोककर कहती : "देखूँगी तू कितने दिन सरकस की घोड़ी बनी रहेगी ? गाड़ी में न जोत दिया तो मेरा रानी नाम नहीं।"

किन्तु रेणु तो जैसे चिकना घड़ा थी। रानी माँ की किसी भी बात का कोई असर ही नहीं होता था उस पर। उसका व्यवहार भी नहीं बदलता था। धीरे-धीरे रानी माँ तंग आ गई। उसने निश्चय कर लिया कि कोई अच्छा-सा गाहक मिल जाए तो वह रेणु को बेच देगी। कलकत्ते में यू० पी० और पंजाब के सौदागर बहुत आते थे।

गौरी ताड़ गई कि रानी माँ का तेवर बदल रहा है। अब रेणु की खैर नहीं। जने रेणु किसके हाथ पड़ जाएगी, और कहाँ पहुँच जाएगी। अधिक दिन वह वहाँ नहीं टिक सकती। ऐसे-ऐसे कई नाटक देख चुकी थी गौरी। एक दिन अवसर पाकर उसने रेणु से बात चला दी। पूछ लिया : "क्यों री, कलमुँही ! किसी से दिल लगाया ?"

रेणु ने उत्तर दिया : "लगता ही नहीं, गौरी !"

"लगने की नहीं कहती, हरामजादी ! लगाने की पूछती हूँ।"

"मेरे बस की बात नहीं है।"

"तो यहाँ तेरा दाना-पानी नहीं रहा। कोई पंजाबी-बंजाबी आया और तू बिकी।"

रेणु डर गई। उसका कलेजा धक्-धक् करने लगा। बूटासिंह आँखों में घूमने लगा। रेणु ने व्याकुल होकर पूछा : "बात क्या है, गौरी !"

"ढंग अच्छे नहीं हैं।"

"रोज तो बाबू बैठाती हूँ।"

"तूने किसी बाबू को पकड़ा तो नहीं।"

"सो क्या मेरे हाथ की बात है ?"

"है क्यों नहीं ?"

"तू तो ऐसी बातें कर रही है जैसे मेरी सात जनम की शत्रु है।"

"शत्रु नहीं हूँ तभी तो तुझसे बातें करती हूँ।"

रेणु चुप हो गई। गौरी उसकी परम मित्र थी। इसीलिए वह पड़ी भी थी वहाँ। गौरी के साथ तो वह कहीं भी जाने के लिए तैयार हो जाती। किन्तु गौरी के बिना नहीं। गौरी के बिना...

गौरी ने टोका : "क्या सोच रही है, रेणु !"

रेणु ने कहा : "क्या सोचूँगी, गौरी ! मेरे दिन बुरे हैं। बस।"

"दिन किसी के अच्छे-बुरे नहीं होते, रेणु ! समझ से काम लेने भर का फेर है।"

"गौरी ! मैं मर जाऊँ। और तू मेरे मुर्दे में घुस जा।"

"और गौरी कहाँ से आएगी ?"

"अरी, कलमुँही ! बहुत खेल खेल लिए इस चोले में। अब तू इसका क्या करेगी ?"

"नहीं, रेणु ! अभी तो बहुत-सा खेल खेलना बाकी बचा है। अभी तो खेलना सीख ही रही हूँ।"

"ओ गौरी ! तू और क्या-क्या करेगी ?"

"तुझे बतला दूँ तो मजा ही क्या रह जाएगा ?"

"मेरे सिर की सौगन्ध, गौरी ! जो मुझे नहीं बतलाए।'

गौरी ने रेणु के कान पर मुँह रख कर कुछ कह दिया। रेणु का चेहरा खिल गया। वह और भी अधिक श्रद्धा के साथ गौरी की ओर देखने लगी।

पाँचवाँ परिच्छेद

उस दिन सुधीन आया तो रेणु अपनी पुरानी हठ पर अटल थी। नए बाबू को बैठाकर रेणु ने उसके प्रश्नों का वही नपा-तुला उत्तर दिया और उसके समस्त प्रस्तावों को उसी पुरानी उपेक्षा के साथ ठुकरा दिया। सुधीन ने मीठी-मीठी बातें कहीं। वह मिट्टी की मूरत-सी मौन बैठी रही। सुधीन ने हँसी-ठट्ठा किया। वह हल्के-हल्के मुस्करा दी। सुधीन गुनगुनाने लगा। बड़ी रसीली कविता थी कोई। रेणु बैठी-बैठी इस प्रकार सुनती रही जैसे बहरी हो गई हो। सुधीन के सारे हथकण्डे बेकार कर दिए उसने।

सुधीन बैठा-बैठा बीअर पीता रहा। और सिगरेट फूंकता रहा। रेणु भी बैठी रही। धरती की ओर देखती हुई। एक आँख उठाकर नए बाबू को निहारा नहीं उसने। क्या देखती ? वही तो था। पशु की सन्तान। अभी उठकर वह रेणु की देह से खेलना चाहेगा। रेणु उसे अपना अंग भी स्पर्श नहीं करने देगी। वह अनुनय-विनय करेगा अथवा कलह। फिर वह रानी माँ के पास जाकर शिकायत करेगा। और वही पुराना नाटक एक बार फिर अभिनीत हो जाएगा। रेणु उस नाटक में अपना पार्ट पूरा करने के लिए प्रस्तुत हो रही थी। मन-ही-मन।

किन्तु नाटक नहीं हुआ उस दिन। दो घण्टे के उपरान्त सुधीन उठा और चुपचाप चला गया। रेणु को एक बार तो आश्चर्य हुआ। यह कैसा बाबू है! रुपए के बदले में रेणु की देह नहीं माँगी इसने!! किन्तु किसी भी बाबू के विषय में अधिक कुछ सोचना रेणु की आदत नहीं थी। उसने उठकर भोजन किया और सो गई। सुधीन को वह एकबारगी भूल गई थी। सोने के समय तक।

किन्तु अगले दिन साँझ ढलते ही सुधीन फिर चला आया। रेणु खाली ही थी। रानी माँ ने फीस लेकर सुधीन को उसके कमरे में भेज दिया। फिर वह रेणु को बुलाकर पूछने लगी : "कल इस बाबू के साथ कुछ प्यार-प्रीत हुई थी, रेणु !"

रेणु ने कहा : "नहीं तो, रानी माँ !"

"तो फिर यह आज क्यों चला आया ?"

"मैं क्या जानूँ ?"

"भला आदमी जान पड़ता है, बेटी ! इसे तू बाँध ले। भले घर का ही होगा। मुझे तेरे ऊपर किए गए परिश्रम का मोल मिल जाएगा। अब बहुत दिन हो गए तुझे हराम की खाते।"

रेणु ने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह चुपचाप अपने कमरे में चली आई। किन्तु उसका व्यवहार नहीं बदला। वह उसी प्रकार मिट्टी की मूरत बनी बैठी रही। सुधीन बीअर पीता हुआ बार-बार उसकी ओर देखने लग जाता था। निर्निमेष नयनों से। एक बार। दो बार। दस बार। अन्ततः रेणु से नहीं सही गई वह दृष्टि। उसने कुछ असहिष्णु होकर पूछ लिया : "ऐसे क्या देख रहे हो, बाबू !"

सुधीन ने उत्तर दिया : "तुम को देख रहा हूँ, रेणु !"

"मुझ में ऐसी कौन विशेष बात है ?"

"यही तो खोज रहा हूँ।"

रेणु की समझ में नहीं आई वह बात। क्या खोज रहा है ? पागल है ना क्या ? पागल ही होगा। होश-हवास दुरुस्त रहते इस प्रकार रुपया कौन बरबाद करता है ? किन्तु रेणु की बला से ! थककर अपने-आप चला जाएगा। एक दिन। तब तक आता रहे। रेणु का क्या आता-जाता है ?

सुधीन का निहारना नहीं रुका। रेणु फिर विचलित हो गई। उसने पूछा : "आप फिर क्यों आ गए, बाबू !"

सुधीन ने पूछा : "क्यों ? क्या बात है ?"

"मेरे पास एक बार आकर लौटता नहीं कोई।"

"कारण ?"

"बाबू लोग जिस आशा से आते हैं वह तो पूरी होती नहीं।"

"वे क्या आशा लेकर आते हैं ?"

"अब यह भी क्या मुझे ही बतलाना पड़ेगा ? अपने-आप से पूछकर देखिए।"

"मैं तो पूछ चुका अपने-आप से। मैं जिस आशा को लेकर आता हूँ वह तो पूरी हो जाती है।"

रेणु चकित रह गई। कौन-सी आशा पूरी हो गई ? यह तो एकबारगी नई बात थी ! रेणु ने पूछ लिया :

"क्या आशा लेकर आते हैं आप ?"

सुधीन ने कहा : "ऐसी लड़की को देखने की आशा लेकर जो साधारणतः लड़की नहीं हो।"

"माने ?"

"अपने-आप से पूछकर देख लो।"

"मैं तो कुछ भी नहीं जानती।"

"इसीलिए तो तुम 'तुम' हो। रेणु की तो होड़ नहीं।"

"बातें बना रहे हो।"

"तो लो चुप हो जाता हूँ। तुम्हारे कहे बिना फिर मुँह खोलूँ तो कान पकड़ लेना।"

और सुधीन चुप हो गया। बीअर पीता रहा। सिगरेट का धुआँ उड़ाता रहा। और रेणु की ओर देखता रहा। रेणु का जी चाहा उठकर चली जाए। किन्तु न जाने किस अज्ञात शक्ति ने उसको वहीं विजड़ित किए रक्खा।

पाँच दिन बीत गए इस प्रकार। सुधीन साँझ ढलते आ जाता था। और नौ-दस बजे लौट जाता था। उसने एक बार भी रेणु का शरीर स्पर्श करने की चेष्टा नहीं की। न रेणु से कुछ खाने-पीने का अनुरोध ही किया। न रेणु के बोले बिना मुख खोला। और बोला तो वही गहन गम्भीर वाणी। अश्लीलता का आभास तक नहीं आया उसकी बातों में।

अब रेणु रात-रात भर सुधीन के विषय में सोचने लगी। दिन में भी। यह कैसा पुरुष है ? ऐसा तो कोई पुरुष रेणु ने पहिले कभी नहीं देखा था।

मित्तिर महाशय, समर, जीजा जी, वह पहली रात वाला सेठ, और फिर रोज आने वाले वे नित-नए पुरुष। उन सब में से कोई भी तो ऐसा नहीं था। यह कैसा पुरुष है ? रेणु को अपने प्रश्न का उत्तर नहीं मिला।

तब रेणु ने गौरी पर अपना आश्चर्य प्रकट किया। गौरी हँसने लगी। फिर वह बोली : "अजीब है इसीलिए तो मैंने छाँटकर तेरे पास भेजा है।"

रेणु ने पूछा : "तूने भेजा है ?"

"और नहीं तो यह अपने-आप आ गया ?"

"क्यों भेजा मेरे पास ?"

"तेरा गढ तोड़ने के लिए।"

"मैं समझी नहीं।"

"तो समझ जाएगी। समय आने दे।"

"गौरी ! तुझको कच्चा चबा जाऊँगी।"

"मैंने क्या बिगाड़ा है तेरा ?"

"जने कैसा जाल फैला रही है ?"

"तू चिड़िया ही ऐसी है कि जाल फैलाना पड़ता है। चुग्गा देखकर तो तू फँसती नहीं।"

"मुझे फँसाकर तुझे क्या मिलेगा ?"

"मुझे कुछ नहीं मिलेगा। तुझे कुछ मिले इसीलिए इतनी मर-मार कर रही हूँ।"

"मुझे क्या मिलेगा ?"

"मुक्ति।"

"मुक्ति ?"

"हाँ मुक्ति। अपनी देह से मुक्त हुए बिना नारी का त्राण नहीं होता। देह अत्याचार करती रहती है। मन को मरने नहीं देती।"

"मन क्यों मरे ?"

"मन के मरे बिना इस जीवन में काम नहीं चलता, कलमुँही !"

रेणु की कुछ भी समझ में नहीं आया। किन्तु गौरी को वह गुरु के समान मानती थी। गौरी की ओर से रेणु को किसी अकल्याण की आशंका

नहीं थी। इसलिए वह चुप हो गई। सोचा, देखेगी गौरी की बात का क्या अर्थ है। अनुभूति के आधार पर ही किसी की बात का अर्थ लगाया जा सकता है। अनुभूति के अभाव में रेणु क्या कहती ? व्यर्थ का विवाद करने के लिये उसका जी नहीं चाहा।

सुधीन को आते हुए दस दिन हो गए। रेणु का व्यवहार नही बदला। किन्तु सुधीन उसके मन में समा गया। सुधीन अब उसको निहारता था तो उसको अच्छा लगता था। और उस के कहने से सुधीन उसको नित-नई कहानियाँ सुनाने लगा। सुधीन को जो-जो छाया-चित्र अच्छे लगे थे, उनकी कहानियाँ। रेणु बड़े ध्यान से सुनती थी।

रेणु ने कभी कोई छायाचित्र नहीं देखा था। बाड़ी की सभी लड़कियाँ छायाचित्र देखने जाती थीं। हफ्ते में कई-कई बार। अपने-अपने बाबुओं के साथ। एक दूसरी के साथ भी। एकमात्र रेणु को ही बाड़ी के बाहर पाँव धरने की आज्ञा नहीं मिलती थी। साधिका थी रेणु। अभी तक। सिद्ध हुए बिना रानी माँ किस प्रकार उसकी स्वतन्त्रता का दावा स्वीकार कर लेती ?

और रेणु ने भी कभी अपनी स्वतन्त्रता का दावा रानी माँ के दरबार में पेश नहीं किया था। गौरी ने उसको कलकत्ते के विषय में हजार बातें बतलाई थीं। कलकत्ते जैसे महानगर में न जाने क्या-क्या आमोद-प्रमोद उपलब्ध थे। किन्तु सब कुछ सुन कर भी रेणु का लोभ नहीं जागा था किसी दिन। अब सुधीन की बातें सुनकर उसका लोभ जाग उठा। वह बाड़ी के बाहर जा कर उस अनोखे संसार को अपनी आँखों से देख लेना चाहती थी।

सुधीन ने कई बार कहा कि रेणु प्रस्तुत हो तो वह उसे अपने साथ ले जाकर छायाचित्र दिखा सकता है, कलकत्ते में घुमा-फिरा भी सकता है। रेणु भी मन ही मन उसके साथ बाहर जाने के लिए तैयार हो गई। सुधीन का मुख तथा भाव-भंगिमा देखकर भय नहीं जागता था रेणु के मन में। किन्तु सुधीन का प्रस्ताव सुन कर रेणु ने कुछ नहीं कहा। रानी माँ की आज्ञा के बिना बाड़ी के बाहर पाँव देना असम्भव था। और रानी माँ से कौन

कहने जाता ?

एक दिन रेणु ने गौरी से कह दिया : "गौरी ! तू सिनेमा में जाती है। सारे कलकत्ते में घूमती-फिरती है। अकेली-अकेली, कलमुँही !"

गौरी बोली : "अकेली कहाँ, रेणु ! अपने बाबुओं के साथ जाती हूँ।"

"अरी मर ! उनके साथ की बात मैं नहीं कह रही। मेरा मतलब तू अपनी रेणु को तो कभी साथ नहीं ले जाती।"

"रानी माँ से पूछ ले। वे मान जाएँ तो मुझे कोई आपत्ति नहीं।"

"आपत्ति नहीं ! ! खुश नहीं होगी मुझे साथ ले जाकर ?"

"बच्चे को साथ ले जाकर कौन खुश होता है, हरामजादी ! बच्चे का बोझा ढोओ, या अपना जी बहलाओ ?"

"तो जा। मैं तुझसे नहीं बोलूँगी। आज से मेरी-तेरी कुट्टी। बड़ी आई बड़ी-बूढ़ी ! मैं तेरा आदर करती हूँ, इसका क्या यह अर्थ है कि तू मुझ पर रौब जमाने लगे ?"

रेणु चलने लगी। गौरी ने उठकर उसका हाथ पकड़ लिया। फिर वह बोली : "रानी माँ के साथ मेरा एक और महाभारत देखना चाहती है, रेणु !"

रेणु ने पूछा : "कैसा महाभारत ?"

"मैंने तेरे बाहर जाने का नाम लिया और रानी माँ चिल्लाई।"

"तो तू चली आइयो।"

"बदले में चिल्लाऊँ नहीं ?"

"नहीं, गौरी ! तुझे मेरी सौगन्ध।"

"और यदि रानी माँ ने कह दिया कि कोई बाबू रेणु को साथ ले जाए तो रेणु को मनाही नहीं है ?"

"मैं तो तेरे साथ जाने की बात कह रही हूँ।"

"मेरे साथ तो रानी माँ तुझे नहीं ही जाने देंगी। मेरी-तेरी परीत देख कर वे पहिले ही जली जाती हैं।"

रेणु ने सिर झुका लिया। कहा कुछ नहीं। गौरी ने पूछा : "रेणु ! तेरा बाबू तुझे साथ ले जाने के लिए तैयार है ?"

रेणु ने लजा कर कहा : "तैयार तो हैं ?"

"तू जाएगी उसके साथ ?"

रेणु ने मरी आवाज में कहा : "चली जाऊँगी।"

"तो रीझ गई तू इस बाबू पर ?"

रेणु ने आँखें निकाल कर कहा : "देख गौरी ! मेरे साथ ठट्ठा किया तो कलमुँही का मुँह नोंच लूँगी।"

गौरी हँसने लगी। और साँझ के समय उसने रानी माँ से बात चला दी। रानी माँ खीजकर बोली : "हरामजादी को घर में आए आदमी से बात करने की तो तमीज़ नहीं। बाहर घूमने जाएगी ! !"

गौरी ने प्रतिवाद किया : "अब तो उसने बाबू बाँध लिया है, रानी माँ !"

"वह छोकरा बाबू है ? कोई पागल दीख पड़ता है, पागल ! वह रेणु को भी खराब कर रहा है। उससे कह दूँगी कि आज पीछे इस बाड़ी में पाँव नहीं दे।"

"क्यूँ, रानी माँ ! उसमें क्या कमी है ?"

"तू नहीं जानती, हरामजादी ! रोज आता है। रुपये देता है। और बैठकर चला जाता है। रेणु के कमरे का दरवाज़ा अभी तक एक बार भी बन्द नहीं हुआ।"

"भद्र आदमी है, रानी माँ ! इसीलिए।"

"ना, गौरी ! मेरा तो मन उसको देखते ही कहता है कि कोई उचक्का है वह। रेणु की खैर नहीं।"

"वह क्या करेगा रेणु का ?"

"तू नहीं जानती ? मैंने ऐसे-ऐसे बहुत देखे हैं उठाईगीरे।"

गौरी का पारा चढ़ रहा था। वह रानी माँ के पास से उठकर चली आई। और रेणु को देखकर उस पर बिगड़ पड़ी : "ठीक तो कहती हैं रानी माँ ! जने किस पागल को पाल लिया है तूने ! !"

रेणु को भी क्रोध आ गया। वह बोली : "मैंने पाल लिया है ? रुपये तो रानी माँ लेकर रख लेती हैं ! रोज़-रोज़। और नाम मेरा होता है। वे

न चाहें, न आने दें उनको। कौन-से मेरे सगे हैं जो धाड़ें मार-मारकर रोऊँगी !"

रेणु तुनक कर अपने कमरे में चली गई। उस रात सुधीन आया तो रानी माँ ने रेणु को बुला भेजा। वह बोली :

"रेणु बेटी ! इस बाबू को तू छोड़ दे।"

रेणु ने पूछा : "क्यों, रानी माँ ?"

"यह तुझे बहुत सताता है।"

"कहाँ, रानी माँ ! ये तो बहुत सीधे हैं।"

"मैंने तो सुना है कि वह तेरी देह पर बहुत अत्याचार करता है।"

"कौन कहता है, रानी माँ ! इन ने तो मेरी ओर देखकर आँख भी मैली नहीं की।"

"तू झूठ बोल रही है।"

"काली माँ की सौगन्ध खाती हूँ, रानी माँ ! जो इन ने मेरा बाल भी छुआ हो।"

"बड़ा पक्ष कर रही है।"

"पक्ष क्या हो गया इसमें ? मैं तो सच बात कह रही हूँ।"

"मैं सब जानती हूँ। कल से इस बाबू को इस बाड़ी में पाँव नहीं धरने दूँगी।"

रेणु चुपचाप अपने कमरे में लौट आई। उसका चेहरा उतरा हुआ था। सुधीन ने पूछा : "बड़ी उदास लग रही है, रेणु !"

रेणु ने कहा : "कहाँ ? नहीं तो।"

"मुझ से छुपाओ मत, रेणु !"

रेणु ने सिर झुका लिया। बोली कुछ नहीं। उसकी आँखों में आँसू उमड़ रहे थे। सुधीन ने उसके समीप सरक कर पूछा : "बात क्या है, रेणु !"

रेणु ने कहा : "कुछ भी नहीं।"

"कुछ है तो। ऐसी उदास तो तुमको कभी नहीं देखा। तुम्हारी अटूट उदासी के बीच भी।"

"रानी माँ को आपका यहाँ आना पसन्द नहीं है।"

"क्यों ? मेरा दोष ?"

"मैं क्या जानूँ।"

उस रात उन दोनों में और बातें नहीं हुई। सुधीन भी जल्दी उठकर चल दिया। उसका नियम था कि पहली रात को जाते समय अगली रात की फीस रानी माँ को देकर वह रेणु को रिज़र्व कर जाया करता। आज वह रानी माँ को फीस देने लगा तो रानी माँ स्वर में ममता भर कर बोली : "अरे बेटा ! क्यों रुपया बरबाद करते हो इस कलमुँही पर ? इस बाड़ी में क्या लड़कियों की कमी है ? एक-से-एक चढ़ती हुई है मेरे पास। किसी और को क्यों नहीं पकड़ लेते ?"

सुधीन ने हँसकर उत्तर दिया : "नहीं, रानी माँ ! मुझे रेणु बहुत अच्छी लगती है।"

"रेणु तो कल से खाली नहीं मिलेगी।"

"क्यों ? क्या मेरे आने से पहिले ही कोई...

"अब तुम जानते हो कि रेणु के रूप की कलकत्ते-भर में चर्चा चल रही है। एक बहुत बड़ा सेठ आकर रिजर्व कर गया।"

"सेठ ने जो दिया है उससे अधिक मुझसे ले लो।"

"सो कैसे हो सकता है ?"

"तो तुम यह क्यों नहीं कह देतीं कि तुमको मेरा यहाँ आना पसन्द नहीं है।"

"कैसी बात कहते हो, बेटा ! तुम्हारा घर है यह। रोज आओ। दिन में आओ। रात को आओ। जब जी चाहे तब आओ।"

"किन्तु रेणु के पास नहीं ?"

"नहीं।"

"आखिर बात क्या है ?"

"रेणु को तुमसे परीत होने लगी है।"

"तो क्या दोष है ?"

"लो सुनो इनकी बात !! क्या दोष है ? उसको परीत करनी थी तो वह मेरी बाड़ी में क्यों आई ? मैं क्या लड़कियों पर इतनी मेहनत इसलिए

करती हूँ कि राह चलते लोग उन्हें उड़ा ले जाएँ ?"

"मैं रेणु को कहीं नहीं ले जाऊँगा।"

"नहीं, बाबा ! नहीं ! चोर का विश्वास मैं कर सकती हूँ। प्यार-परीत करने वालों का विश्वास नहीं कर सकती।"

सुधीन हँसने लगा। फिर उसने रुपयों की एक मोटी-सी गड्डी निकालकर रानी माँ के हाथ में दे दी। रानी माँ रुपये गिनने लगी। सुधीन बोला : "रानी माँ ! रेणु से परीत की है तो मैंने। रेणु ने तो नहीं की। उसका दिल तो पत्थर का है। पत्थर की पूजा की जा सकती है। उसके साथ परीत करके कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। इसलिए भय की कोई बात नहीं, रानी माँ ! तुम्हारी रेणु तुम्हारी ही रहेगी। जी नहीं मानता हो तो जितनी देर मैं यहाँ रहता हूँ उतनी देर कमरे पर पहरा बैठा दिया करो।"

रानी माँ ने रुपये गिनकर सन्दूक में रख लिए। इसका अर्थ था कि सुधीन रेणु के पास आ सकता है।

सुधीन रानी माँ के कमरे से बाहर निकला तो उसने देखा कि रेणु दबे पाँव अपने कमरे की ओर भागी जा रही है। तो वह रानी माँ के कमरे के बाहर खड़ी होकर उनकी बातें सुन रही थी ? पत्थर में प्राणों का संचार हो रहा था शायद ?

और अगली रात सुधीन ने अपनी आँखों से देखा कि रेणु बदल रही है। आज वह परिहास करने लगी सुधीन के साथ। भोले-भाले परिहास। किन्तु परिहास तो किया ! वह पसीजी तो !!

रेणु के मुख पर माधुर्य छलकने लगा। आँखों में अभिसार का आमन्त्रण। रेणु के अन्तर में अनेक दिन से प्रसुप्त प्रणयिनी अँगड़ाइयाँ ले रही थी। उसका अविकासित यौवन खिल उठने के लिए छटपटा रहा था। प्रणय का पराजित पारावार फिर से उफन कर रेणु को अपने अन्तर में आत्मसात किया चाहता था।

एक सप्ताह तक झूलती रही रेणु उस प्रणय-पारावार की दोला में। अब वह हठ करके कहती थी कि सुधीन रात-भर वहीं ठहर जाए। किन्तु सुधीन ने उसकी बात स्वीकार नहीं की। न जाने क्यों ? रेणु को उस पर

क्रोध आया। किन्तु कुछ क्षण के लिए ही। फिर उसका प्रेम सुधीन को क्षमा कर देता था। वह सपनों में डूब जाती थी। रात को सोकर सपने देखती थी। दिन को जाग कर। अब उसके संसार में सुधीन के सिवाय कुछ नहीं रह गया था।

रानी माँ भी घात लगाए बैठी थी। अपने अनुभव से वह जानती थी कि प्रणयविह्वल नारी के समान पुरुष के लिए अन्य बन्धन नहीं होता। उस बन्धन में फँस कर पुरुष प्राण भी दे देता है। हंसते-हँसते। इसलिए अवसर आया जान कर रानी माँ ने अपना वार करना आरम्भ कर दिया। सुधीन निकल कर भागे उसके पूर्व ही रानी माँ उसके सुनहले पंख मूंड लेना चाहती थी।

एक रात सुधीन अगली रात की फीस देकर जाने लगा तो रानी माँ बोली :

"अरे बेटा! रेणु के कमरे का सारा सामान किराए पर आया हुआ है। रोज-रोज किराया देते-देते मेरा तो दिवाला निकल गया। अभी तक यही सोचती रही कि रेणु जरा जम जाए तो उसके कमरे का सामान खरीद दूँ उसके लिए। किन्तु मेरे पास तो पैसे ही नहीं हैं। कई महीने का बाड़ी-भाड़ा भी सिर पर चढ़ा है।"

अगली रात सुधीन ने रेणु के कमरे में जाने के पूर्व ही नोटों की एक गड्डी रानी माँ के हाथ में थमा दी।

चार दिन और बीते। रानी माँ ने फिर मोम बनकर कहा :

"तुमने बहुत दिया है, बेटा! मेरा तो मुँह नहीं खुलता। किन्तु क्या बताऊँ, बेटा! तुम्हारे आने से पहिले इस कलमुँही ने किसी बाबू को टिकने ही नहीं दिया। इसके सिर पर बड़ा-सा कर्जा हो गया है। तगादा करने वाले नाकों दम किए दे रहे हैं।"

सुधीन ने नोटों की एक और गड्डी रानी माँ की गोद में पटक दी।

किन्तु रानी माँ तो हार मानने वाली नहीं थी। गाय दुधुआ गई थी। दूध की अन्तिम बूँद तक दूह लेना रानी माँ का परम पुनीत कर्त्तव्य था। उस कर्त्तव्य कर्म से रानी माँ पराङ्मुख कैसे होती? एक रात वह सुधीन

के आने पर सीधी रेणु के कमरे में जा धमकी। इधर-उधर की बातें करने के उपरान्त वह रेणु से बोली : "रेणु बेटी! बाबू के पाँव धो-धोकर पीया कर। इस कमरे का सारा सामान अब तेरा है। बाबू ने तो तेरा कर्जा भी चुका दिया। सारा का सारा। कल मैंने सुनार को बुलाया है। अपनी बेटी को नंगी-बूची देख कर मेरा तो जी जल-जल जाता था। किन्तु मेरे बस की तो बात नहीं थी। गहना कहाँ से लाती ? अब बाबू तुझे सिर से पाँव तक पीली कर देगा।"

रेणु ने सिर झुका लिया। सुधीन भी कुछ नहीं बोला। तब रानी मां ने सुधीन से कहा :

"इतनी देर करके मत आया करो, बेटा! तुम्हारी राह देखते-देखते मेरी बेटी सूख-सूख जाती है। इसको इतना दुख मत दिया करो, बेटा! इसका दुख देखकर मेरा तो दिल फट जाता है।"

उस रात सुधीन उठकर चलने लगा तो वह बोला : "रेणु! आज तुमसे विदा लेता हूँ।"

रेणु ने चमक कर उसकी ओर देखा। जैसे किसी ने चोट मार दी हो। उसने पूछा : "क्या कहा ?"

सुधीन ने उत्तर दिया : "फिर कभी तुमको कष्ट देने नहीं आऊंगा।"

"मुझे तो कोई कष्ट नहीं होता।"

"कष्ट न सही। मेरे पास बैठे-बैठे तुम्हारा जी तो ऊब जाता है ?"

"मेरा जी क्यों ऊबने लगा ?"

"तो अच्छा लगता है ?"

"हाँ, अच्छा लगता है।"

"खैर! अब तो उपाय ही नहीं रहा।"

"क्यों ? क्या बात हो गई ?"

"रानी माँ को देने के लिए मेरे पास अब और रुपया नहीं रह गया।"

रेणु ने सिर झुका लिया। इस बात का भला उसके पास क्या उत्तर हो सकता था ? रुपये के बिना तो रानी मा सुधीन को नहीं आने देंगी।

आँखे डबडबा आईं रेणु की। और सुधीन ने देख ली वे आँखें। जैसे

मरुस्थल पर हिमकरण का प्रथम शीकर-सम्पात हुआ हो। वह मुस्करा कर बोला : "रुपया तो मैं उधार भी ला सकता हूँ...

रेणु ने सिर ऊपर उठाकर अनुनय की : "तो उधार ले आइए, बाबू !"

साथ ही रेणु के कपोलों पर अश्रुधार बह चली। सुधीन उन आँसुओं को पोंछता हुआ बोला : "तू रो क्यों रही है, रेणु !"

रेणु ने सिसक कर कहा : "आप कल से नहीं आएंगे।"

"जरूर आऊँगा। नहीं क्यों आऊँगा ? तू कहेगी तो जरूर आऊँगा"

"मैं क्या मना करती हूँ ? मैं तो चाहती हूँ कि आप यहाँ से जाएँ ही नहीं।"

सुधीन ने उठकर कमरे का द्वार बन्द कर दिया। रेणु देखती रही और मुस्कराती रही। रेणु ने विरोध नहीं किया।

और उस रात रेणु ने आत्म-समर्पण कर दिया। पराजित होकर नहीं। मन पर बलात्कार करके भी नहीं। सहज, सरल भाव से। सुधीन की मुस्कान पर मुग्ध होकर। अपने अन्तर में उमड़ते हुए माधुर्य में सराबोर होकर। नारी जिस क्षण की बाट जोहा करती है, वह क्षण आ पहुँचा था। अनेक अग्नि-परीक्षाओं के उपरान्त।

: २ :

सुधीन गया तो आधी रात हो चुकी थी। रेणु गौरी के कमरे में जा पहुँची। गौरी सोने की तैयारी कर रही थी। आज तबियत खराब होने के कारण उसने अपने बाबू को जल्दी उठा दिया था। रेणु को देखकर गौरी खड़ी-की-खड़ी रह गई। न जाने क्या था रेणु के नयनों में ? गौरी ने पूछा : "आज तू बहुत पी गई, कलमुँही !"

रेणु ने उत्तर दिया : "कहाँ ? मैंने तो मद छुआ भी नहीं आज तक।"

"दाई से पेट छुपाती है, हरामजादी ! मुझसे झूठ बोला तो कहे देती हूँ तेरा मुँह नहीं देखूँगी।"

रेणु ने अपना मुँह गौरी के मुँह से लगा दिया और फिर वह बोली : "ले सूँघ ले मेरी साँस। मद की दुर्गन्ध तो तू पहिचानती है।"

गौरी को आश्चर्य हुआ। रेणु की साँस में मद की लेशमात्र भी गन्ध नहीं थी। वह बोली : "रेणु ! बात क्या है ? तेरी आँखें देखकर तो कोई भी कह देगा कि तू मतवाली हो गई है।"

रेणु ने कहा : "मतवाली तो हो गई हूँ, गौरी ! किन्तु मद पीए बिना ही।"

"सो कैसे ?"

"तू नहीं जानती ?"

"नहीं तो।"

"तूने ही तो कहा था, कलमुँही ! कि पुरुष का प्रणय पाकर नारी प्रमत्त हो जाती है। आज मैं प्रमत्त हो गई।"

"अच्छा ! तो यह बात है ! ! रानी माँ से कहे देती हूँ कि रेणु अब साधिका नहीं रही, सिद्ध हो गई है।"

"धुत् ! यह भी कोई रानी माँ से कहने की बात है ?"

"क्यों ? रानी माँ तो बेचारी मुँह बाए बाट जोह रही हैं कि कब रेणु अपनी हठ छोड़े और कब उनकी बाड़ी में बड़े-बड़े आदमियों की बैठक जमे।"

"बड़े आदमियों से मुझे क्या मतलब ?"

"उनको तो तुझ से मतलब है। तू नहीं जानती कि ननकू ने कहाँ-कहाँ तेरे फोटो बाँट रक्खे हैं।"

"बाँटने दो।"

"मन में गुदगुदी हो रही है ना ?"

"नहीं, भय लग रहा है।"

"कैसा भय ?"

"कहीं ये बाबू मुझे छोड़कर न चले जाएँ।"

"तो क्या चिन्ता है ? कोई दूसरा बाबू आ जुटेगा। बाबुओं की तो कलकत्ते में कमी नहीं।"

रेणु ने गौरी की गर्दन पकड़ ली और गौरी को झकझोर कर वह बोली : "देख, गौरी ! तूने फिर कभी ऐसी बात कही तो तुझे गला घोंटकर मार डालूँगी।"

गौरी ने हँसकर कहा : "मुझे तो तू बेशक मार डाल। किन्तु उससे तेरा भय दूर नहीं होगा। भय दूर करने के लिए तो रानी माँ का गला घोंटना होगा तुझे।"

इसी समय रानी माँ ने कमरे में प्रवेश किया। गौरी की आखिरी बात उसने सुन ली थी। वह त्यौरी चढ़ाकर बोली : "हाँ, मेरा गला घोंटना और बाकी रह गया है, हरामजादी !"

गौरी ने तनिक भी अप्रतिभ हुए बिना कहा : "तो, रानी माँ ! यह आपकी नई बेटी मेरा गला घोंटने पर तुली है। मैंने कहा मुझे क्यों मारती है, जाकर रानी माँ से निपट ले।"

रानी माँ ने रेणु से पूछा : "क्या बात है, रेणु !"

रेणु ने कहा : "कुछ नहीं, रानी माँ ! गौरी का माथा खराब हो गया।"

"माथा क्या इसका आज खराब हुआ है ?"

उत्तर दिया गौरी ने : "नहीं, रानी माँ ! जिस दिन मेरा जन्म हुआ उसी दिन मेरा माथा खराब था। तभी तो आपका इतना काम कर दिया मैंने। नहीं तो मैं भी कभी की बाड़ीवाली बन गई होती।"

रानी माँ ने गौरी की अवहेलना करके रेणु से कहा : "चल, रेणु बेटी ! तू अपने कमरे में चल। इस हरामजादी के पास बैठकर तू भी बिगड़ जाएगी।"

रेणु रानी माँ के साथ हो ली। गौरी ने सुना दिया : "रेणु को डिबिया में डाल कर रखना, रानी माँ ! मेरी गन्ध भी लग गई यह गल-गल जाएगी।"

रेणु के कमरे में पहुँच कर रानी माँ ने पूछा : "रेणु ! आज तेरे बाबू के साथ तेरा झगड़ा हुआ है क्या ?"

रेणु विस्मित रह गई। यह क्या कह दिया रानी माँ ने ? झगड़ा ! आज तो...

रानी माँ ने कहा : "रोज-रोज तो वह जाने से पहिले मुझसे मिलकर जाया करता। अगली रात की फीस भी जमा करा जाया करता। आज जने क्या हुआ ?"

रेणु बोली : "हमारा तो कोई झगड़ा नहीं हुआ, रानी माँ ! मेरे कमरे

से तो वे हँसते-हँसते ही निकले थे।"

"तो भूल गया होगा। चलो कल सही। आज सुनार की बात पक्की कर जाता तो अच्छा होता। कल मैं सुनार को बुला भेजती।"

"रानी माँ! ये सुनार-उनार के किस्से आप क्यों छेड़ती हैं?"

"नहीं क्यों छेड़ूँगी?"

"मुझे नहीं चाहिएँ गहने-वहने।"

"तेरे नहीं चाहने से क्या होता है? मुझे तो चाहिएँ।"

"आप के पास क्या गहनों की कमी है?"

"नहीं! बहुत घड़वा दिए है ना तेरे बाप ने!! मेरे पास क्या गहनों की कमी है!! लो सुन लो इसकी बात!!!"

"अरे लो, रानी माँ! वे रोज-रोज उधार रुपए लाकर आपको दे रहे हैं। आखिर कहाँ से...

"उधार लाकर दे, या अपनी जोरू बेच कर दे। मुझे मतलब?"

रेणु क्रोध से पागल हो गई। वह चिल्ला कर बोली: "कल आने दो उनको। कह दूँगी कि आपको एक धेला और नहीं दें। लूटने की भी कोई हद होती है!!"

"तेरे बाप की बाड़ी है ना जो खसम को बुलाकर उसके कान भर देगी!! देखूँ तो मुझसे पूछे बिना कल से वह कैसे तेरे कमरे में पाँव भी धरता है। पाँव काट लूँगी उसके। और तू ने चाँ-चाँ की तो तेरी जीभ भी खींच लूँगी। तूने समझ क्या रखा है, हरामजादी! दो बार बेटी कह कर मीठी बोल ली तो सिर पर ही चढ़ गई!"

रेणु रोने लगी। फूट-फूटकर। रानी माँ का हंगामा सुनकर बाहर बरामदे में बाड़ी के नौकर जमा हो गए। बाड़ी की दूसरी लड़कियां भी इकट्ठी हो गईं। अपने-अपने बाबुओं को कमरे में बैठे छोड़कर। रेणु जानती थी कि गौरी के अतिरिक्त अन्य सब लड़कियाँ उससे डाह करती हैं। रेणु उनको फूटी आँखों से भी नहीं सुहाती थी। वे सब रेणु को सुना-सुनाकर कहती रहती थीं कि रानी माँ ने पीली मिट्टी की मूरत को सोने के सिंहासन पर बैठा रक्खा है, सिंहासन भी मिट्टी का हो जाएगा। आज रानी माँ तो रेणु पर

बरसते देखकर उन सबकी बाछें खिल गई। वे भूल गई कि वे नई-नई आई तो उनको भी सोने के सिंहासन पर बैठाया गया था और फिर एक दिन वह सिंहासन भी मिट्टी का हो गया था।

रेणु खाना खाए बिना ही सो गई। रात-भर नींद नहीं आई रेणु को। तकिए में मुँह छुपा कर रोती रही वह। उसको बार-बार सुधीन के स्वर में भरे प्रणय-माधुर्य का स्मरण हो आता था। और फिर स्मरण हो आती थी रानी माँ की कर्णकटु ताड़ना। रेणु की हिचकियाँ बंध जाती थीं। वह यह निश्चय नहीं कर पाती थी कि इन दोनों स्वरों में से कौनसा सत्य है, और कौनसा मिथ्या, कौनसा स्वर जीवन में उसके साथ रहेगा और कौनसा सपने के समान मिटकर स्मृति के गर्भ में विलीन हो जाएगा।

रेणु ने अपने जीवन में अनेक कुछ सहा था। होश सँभाला तब से लेकर। सुधीन का दिया हुआ प्रणय-प्रसाद पाने तक। किन्तु वह समस्त दुख उसने चुपचाप सह लिया था। सुख की अनुभूति ने कभी उसके मानस का स्पर्श किया होता तो दुख दुःसह प्रतीत होता। वह जानती ही नहीं थी कि सुख क्या होता है। इसलिए दुख को भी वह नहीं पहिचान पाई थी। अनुभूति की एकरसता तुलनात्मक विचार करने का अवसर ही नहीं देती।

किन्तु अब तो रेणु को सुख की अनुभूति मिल चुकी थी। पुरानी नहीं थी वह अनुभूति। नई ही थी। चन्द घंटे पुरानी। किन्तु उस अनुभूति की तीव्रता ने उसको आपदमस्तक तर कर दिया था। वह अन्य किसी अनुभूति का आभासमात्र भुला बैठी थी। वह मानने लगी थी कि उसके जीवन में जो स्वर्ण-विहान उदय हुआ है वह कभी अस्त नहीं होगा। और वह ऊषा की अरुणिमा में अगंडाइयाँ लेती रहेगी।

किन्तु रानी माँ ने उसको जता दिया कि वह भ्रम में पड़ी हुई है। और रेणु रो-रोकर पागल हो गई।

अगले दिन भी रेणु ने स्नान-भोजन नहीं किया। साँझ तक। न किसी ने उसे नहाने-खाने के लिए टोका। गौरी ने भी नहीं। रानी माँ ने उसको रेणु के पास जाने के लिए मना कर दिया था। रेणु अकेली पड़ी रोती रही। दिन भर। रो-रोकर उसकी आँखें सूज गई।

किन्तु साँझ होते ही न जाने उसको क्या हो गया। न जाने उसके आँसू कहाँ गए। किसी की स्मृति उसके मानस में कुनमुना रही थी। और अब उस आने वाले के आने की वेला आ लगी थी। अब रेणु को आँसू नहीं बहाने चाहिएँ। अब तो रेणु को सज-धज कर सजन की बाट जोहनी चाहिए। और रेणु सचमुच ही सज-धजकर बैठ गई। आँसुओं को सुखाकर। मुस्कान से अपना मुखड़ा चमका कर।

किन्तु सजन तो नहीं आए। और रेणु सजी-धजी बैठी रही। सुधीन के आने का नियमित समय व्यतीत हो जाने पर रेणु की एक आँख घड़ी पर थी और दूसरी दरवाजे पर। घड़ी की सुइयाँ दौड़ी जा रही थीं। किन्तु दरवाजे में किसी की छाया भी दिखाई नहीं दी। घड़ी की टक्-टका-टक् सन्नाटे को भंग किए दे रही थी। किन्तु सजन के स्वर-माधुर्य के अभाव में सन्नाटा फिर घिर-घिर आता था। रेणु का हृदय उद्वेलित था। अब आए बाबू! अब आए!!

एक घण्टा बीत गया। और सुधीन नहीं आया। बाहर किसी की पद-चाप सुनकर दरवाजे की ओर दौड़ जाती थी रेणु। प्रत्येक पदचाप सुन-कर रेणु को विश्वास हो जाता था कि सुधीन आ रहा है। किन्तु बराम्दे में झाँकते ही उसकी आँखें उसके विश्वास को लूट लेती थीं। मिट्टी की आँखें! मिट्टी के संसार को देखने वालीं!! रेणु के मन में भरी विरहव्यथा वे नहीं देख पाईं। देख पाईं केवल उस बाड़ी का बराम्दा जिसमें नौकर और बाड़ी की लड़कियाँ यदा-कदा यातायात कर रहीं थीं।

हार कर रेणु अपने कमरे के दरवाजे पर आ खड़ी हुई। वहाँ से वह सीढ़ी पर से उठते हुए प्रत्येक प्राणी को देख सकती थी। और अपलक नयनों से देखने लगी रेणु! सीढ़ियों के द्वार पर किसी की छाया-सी दीख पड़ती थी तो रेणु का हृदय नाच उठता था। अबकी बार आने वाले अवश्य ही उसके बाबू हैं!! किन्तु आने वाले के बाहर आते ही रेणु का हृदय कुम्हला जाता था। ये तो उसके बाबू नहीं हैं! और किसी के बाबू हैं!!

सबके बाबू आते रहे। किन्तु रेणु के बाबू नहीं आए। रेणु अपने कमरे को खुला छोड़कर सीढ़ियों के द्वार पर आ खड़ी हुई। उसको यह ज्ञान ही नहीं

रहा कि उसने बाड़ी का बरामदा कब पार कर लिया। आँखें सीढ़ियों के द्वार पर लगी थीं। पाँव अनायास ही उस ओर चल निकले जिधर आँखों को कुछ आशा थी। रेणु के मन ने उसे एक बार भी नहीं रोका कि वह कहाँ जा रही है, क्यों जा रही है, और कोई क्या कहेगा! मन तो आँसू बनकर आँखों में समा गया था। वह यदि रेणु को टोकता तो ढलक कर धरती पर गिर जाता। और मर मिटता।

सीढ़ियों के द्वार पर दो निष्फल क्षण व्यतीत करके रेणु सीढ़ियाँ उतरने लगी। एक सीढ़ी। दो सीढ़ियाँ। कोई आ रहा था नीचे की ओर से। रेणु सीढ़ी पर स्थिर हो गई। बीचों-बीच। आने वाले को अपने बाहुपाश में भर लेगी वह।

आने वाला आ पहुँचा। और उसको देखते ही रेणु एक ओर को सिमट गई। अपना मुँह दीवार के हृदयहीन सीने में छुपाकर। आने वाला ऊपर चला गया। और रेणु फिर सीढ़ियाँ उतरने लगी।

और अनायास ही बाड़ी के सिंहद्वार पर जा पहुँची रेणु। सुधीन को देखने के लिए आँखें तरस रही थीं उसकी। किन्तु आध घण्टा और बीत गया और सुधीन ने रेणु की सुध नहीं ली।

रेणु बाड़ी का सिंहद्वार पार करके सड़क पर निकल जाने के लिए प्रस्तुत हो गई। सुधीन के लिए वह सड़क पर चलकर जाएगी। पाँव-पाँव चलकर जाएगी। कहाँ जाएगी? यह रेणु ने एक बार भी नहीं सोचा। उस समय वह सारे शहर की खाक छानने के लिए तैयार थी। वह शहर का कोना-कोना देखने के लिए लालायित थी। सुधीन जहाँ भी छुपा हो वहीं से उसको निकाल लाने के लिए। वह सुधीन का नाम ले लेकर दसों दिशाओं को विदीर्ण कर देगी...

सिंहद्वार का नेपाली दरबान रेणु को देख कर खड़ा हो गया। दूसरा नौकर दीवार से पीठ सटाए ऊँघ रहा था। दरबान ने उसको जगा दिया। वह आँखें मलता हुआ रेणु को देखने लगा। और फिर खड़ा होकर बोला: "क्या चाहिये, माँ!"

रेणु ने रोकर कहा: "मेरे बाबू नहीं आए, किशन!"

"आ जायेंगे, माँ ! अभी आते ही होंगे।"

"अरे देख तो कहीं गली में न खड़े हों वे।"

"बाबू लोग गली में नहीं रुकते, माँ ! सड़क पर से चलकर सीधे बाड़ी में ही आ जाते हैं।"

"तो वे अभी तक क्यों नहीं आए ?"

"कहीं कोई काम हो गया होगा, माँ ! आ जाएँगे।"

"वे आज नहीं आएँगे।"

"तो कल आ जाएंगे, माँ !"

"अरे तू देख तो आ। वे कहीं मोड़ पर खड़े हों ?"

"इस बाड़ी में आने वाले भद्र बाबू मोड़ पर नहीं खड़े होते, माँ !"

"अरे तू देख भी तो आ।"

"बेकार है, माँ !"

"तो मैं ही जाती हूँ। उनको साथ लेकर ही लौटूँगी।"

"आप कहाँ जाएंगी, माँ ! आप उनको कहाँ पाएंगी ?"

"जहाँ भी वे हों।"

"नहीं, माँ ! आप लोग इस समय अकेली बाहर नहीं जातीं। आप ऊपर चल कर बैठिए।"

किन्तु रेणु ने नौकर की बात नहीं सुनी। न वह वहाँ से हिली। बस मुँह बाए रास्ते की ओर देखती रही। नौकर ने फिर अनुनय की :

"आप ऊपर चल कर बैठिए, माँ ! यहाँ खड़ा होना ठीक नहीं। यहाँ पर अनेक लोग आते-जाते हैं।"

रेणु ने कहा : "मैं नहीं जाऊँगी ऊपर। ऊपर जाकर मैं क्या करूँगी ? मेरे बाबू तो आए नहीं। वे आएंगे तब तक मैं यहीं खड़ी रहूँगी।"

"बाबू अभी आया चाहते हैं, माँ ! आप जाइए भी ऊपर !"

"नहीं, मैं नहीं जाऊँगी।"

"आप ऊपर जाकर बैठें तो मैं अभी उन को बुला लाता हूँ।"

रेणु ने गद्‌गद् होकर नौकर की ओर देखा : "तो तू उनका घर जानता है ? जा अभी चला जा। तुरन्त बुलाकर ले आ उनको। कहना रेणु रो-रो

बावली हुई जा रही है।"

नौकर ने कहा : "आप ऊपर जाएं तो मैं उनको बुलाने जाऊँ माँ !"

"नहीं रे ! मैं तो यहीं खड़ी रह कर उनकी राह देखूँगी। तुझे देर थोड़े ही लगेगी। वे मेरा नाम सुनते ही तेरे साथ चले आएंगे। तू जा। देर मत कर, किशन !"

नौकर ने हार मान ली। रानी माँ को बुला लाने के अतिरिक्त अब उसके पास कोई चारा नहीं था। वह नेपाली दरवान की ओर आँख का संकेत करके बोला : "तो, माँ ! मैं ऊपर जाकर जूता पहिन आता हूँ।"

रेणु ने कहा : "जूता पहिन कर जल्दी आना। बहुत देर हो रही है।"

नौकर लपक कर सीढ़ियाँ चढ़ गया। और वह लौटा तो रानी माँ उस के साथ थीं। आग बरस रही थी रानी माँ की आँखों से। उसने आते ही रेणु के मुख पर एक तमाचा जड़ दिया। और फिर वह रेणु का हाथ पकड़ कर भीतर खींचती हुई बोली : "तुझे यहाँ आने के लिए किस ने कहा था, हरामजादी !"

रेणु ने चीत्कार किया : "मैं ऊपर नहीं जाऊँगी, रानी माँ ! ऊपर मेरे बाबू नहीं हैं। बाबू के बिना मैं ऊपर जाकर क्या करूँगी ? बाबू के बिना मैं इस बाड़ी में नहीं रहूँगी।"

रानी माँ ने दरबान को आदेश दिया कि सिंहद्वार बंद कर दे। फिर वह रेणु को सीढ़ी की ओर खींचने लगी। साथ ही वह रेणु के मुख पर तड़ातड़ तमाचे मार रही थी। रेणु ने तमाचों से अपना त्राण नहीं किया। किन्तु रानी माँ के खींचने पर वह अपने स्थान से भी नहीं हिली। पूरा जोर लगा कर अपना हाथ छुड़ाने लगी रेणु। सिंहद्वार की ओर जाने के लिए।

और दो क्षण में ही रानी माँ हाँफ उठी। कहाँ तो वह पचास बरस की विगत-यौवना बूढ़ी। और कहाँ सोलह बरस की धींगड़ी रेणु। रानी माँ को पसीना छूट पड़ा। रेणु की देह पर पड़ने वाला हाथ दुखने लगा सो अलग।

तब रानी माँ ने चिल्लाकर बाड़ी की लड़कियों को नीचे बुला लिया। और वे सब रेणु को पकड़ कर उपर घसीटने लगीं।

रेणु ने हाथ-पाँव पटके। शरीर को तोड़ा-मरोड़ा। किन्तु उसके पकड़ने

वाली कई थीं, और वह एक। उपर से रानी माँ के थप्पड़ और घूँसे रेणु के शरीर पर बरस रहे थे।

रेणु ने सीढ़ी पर पटक कर अपना सिर फोड़ लेना चाहा। किन्तु रानी माँ ने उसे वह भी नहीं करने दिया। उसने रेणु का जूड़ा पकड़ लिया। न जाने क्या शक्ति थी उन बूढ़े हाथों में। रेणु का सिर भिन्ना गया। और सहसा शान्त हो गई रेणु। बस आँसू छलकते रहे उसकी आँखों से। निर्निमेष आँखों से। उन आँखों से जिनका सब कुछ छिन चुका था।

रेणु को कमरे में पहुँचवा कर रानी माँ ने बाहर से ताला लगा दिया। गौरी खड़ी-खड़ी सारा काण्ड अपनी आँखों से देख रही थी। उसने भी आँचल से अपनी आँखें पोंछ लीं।

रेणु अपने कमरे में ही पड़ी रही। रोती-बिलखती हुई। उसने अगला दिन अन्न-जल छुए बिना ही बिता दिया। किसी ने पूछा तो उसने उत्तर नहीं दिया। बस पथराई आँखों से पूछने वालों की ओर देखती रही। देखती रही...

किन्तु मिट्टी की देह पाई थी रेणु ने। उस देह में आहार-निद्रा की चाह जागी। उस देह को रोग के भय ने व्याकुल किया। मृत्यु के भय ने भी। रेणु रुग्ण होना नहीं चाहती थी। मरना भी नहीं। उसकी रुग्ण देह, उसकी मृत देह, उसके बाबू के किसी काम नहीं आएगी, इसलिए। और तीसरे दिन रेणु ने उठ कर देह के सभी धर्म निभा दिए।

रानी माँ तो दूसरे दिन से ही उसको समझाने लग गई थी। बड़े प्यार के साथ। बीस बार बेटी-बेटी कह कर। उसकी बातों में सार था। प्राइवेट को किसी बाबू से परीत नहीं लगानी चाहिए! रेणु के मन ने गवाही दी कि रानी माँ सत्य कह रही है।

किन्तु रेणु के अन्तर में उमड़ने वाला रस का सागर एक ही बार उफन कर सूख गया था। जैसे अनावृष्टि के कारण हरित-पल्लवित सस्य सूख जाती है। रेणु बोलती थी तो मानो शब्द खोज रही हो। हँसती तो वह थी ही नहीं। मुस्कराने के लिए भी उसको प्रयास करना पड़ता था।

गौरी ने भी रेणु का खूब साथ दिया। वह घण्टों उसके पास बैठी बातें

करती रहती थी। वह हठ करके रेणु को घुमाने-फिराने के लिए अपने साथ ले गई। रेणु तो अब कहीं भी जाना नहीं चाहती थी। जिस महानगर को देखने के लिए वह एक दिन लालायित हो उठी थी, उसके ही समस्त वैभव का अब कोई मूल्य नहीं रह गया था रेणु के निकट। रानी माँ ने ही जोर देकर उसे गौरी के साथ भेज दिया।

एक दिन रेणु ने गौरी से पूछा : "गौरी ! मेरे बाबू लौटकर क्यों नहीं आए ?"

गौरी ने कहा : "कोई-कोई बाबू होता ही ऐसा है, रेणु ! दो दिन आता है और आग लगा कर चला जाता है। कोई-कोई बाबू दो बरस तक आता रहता है और कहता रहता है कि तुम्हारे बिना जीना कठिन है। तुमको एक पुलक का भी अनुभव नहीं होता। हम लोगों के भाग्य में ऐसा ही बदा है, रेणु !"

"खोए हुए बाबू की खोज-खबर नहीं ली जा सकती, गौरी !"

"बाबू पता छोड़ जाए तो ली जा सकती है। तेरा बाबू तो पता छोड़ नहीं गया।"

"तूने ही तो भेजा था उनको। तू भी उसका पता नहीं जानती ?"

"वह आया तो मैं समझ गई कि आग लगाने वाला है। इसीलिए तो तेरे पास भेजा था उसको।"

"क्या वे फिर कभी नहीं आएँगे ?"

"आ भी सकता है। कभी-कभी...

गौरी चुप हो गई। रेणु ने उसको झकझोर कर कहा : "कभी-कभी क्या, गौरी ! तू कह ना। तू चुप क्यों हो गई, कलमुँही !"

गौरी ने कहा : "तेरे मन में आशा जगाना भी पाप है, रेणु ! आशा को पाल कर बहुत दुख निकलता है, पगली !"

"तो मैं क्या करूँ, गौरी !"

"व्रत ले ले कि फिर कभी किसी से परीत नहीं करेगी। परीत करने का अधिकार तुझे नहीं है।"

"गौरी ! तूने ही तो मुझे परीत करने के लिए कहा था।"

"कब ? नहीं तो !"

"भूल गई ! सेठ ने मेरा सर्वनाश किया तब तूने ही तो कहा था कि जिस नारी की देह को पुरुष की परीत ने पवित्र नहीं किया हो उसके दूषित होने का प्रश्न ही नहीं उठता।"

"इसका अर्थ तो यह था कि कोई पुरुष तुझसे परीत करता। तुझे तो परीत करने के लिए मैंने नहीं कहा था।"

"तो क्या बाबू ने मुझसे परीत नहीं की ?"

"कैसे कह दूँ, रेणु ! तूने परीत की है। मैंने अपनी आँखों से देखी है तेरी परीत। किन्तु बाबू की परीत का तो कोई प्रमाण नहीं।"

रेणु बिलबिला उठी। प्रचण्ड प्रहार किया था गौरी ने। रेणु बोली : "ओ गौरी ! मत कह वह बात !! कलमुँही का मुँह नोंच लूँगी !! "

गौरी हँसने लगी। फिर बोली : "नोंच ले मेरा मुँह। तेरे मन को यदि मेरा मुँह नोंच कर शान्ति मिले तो तू मेरा मुँह ही नोंच ले।"

और गौरी का उठाया हुआ प्रश्न बार-बार रेणु के मन में उठने लगा। क्या बाबू ने भी तुझसे परीत की थी ? वह प्रश्न पूछा जाने से पहिले रेणु के मानस में कोई ऐसी शंका नहीं जागी थी। किन्तु प्रश्न पूछा जाने के उप-रान्त ? रेणु निश्चयपूर्वक हाँ या ना नहीं कह सकी।

बैरी ने परीत की होती तो क्या वह इस प्रकार विलीन हो जाता ? रेणु ने की थी परीत। वह जलविहीन मीन के समान तड़फड़ा रही थी। और वह था कि एक बार लौटकर रेणु की खबर लेने भी नहीं आया ! वह आकर कह देता कि गहनों के लिए रुपये नहीं हैं उसके पास। रेणु रानी माँ के पाँवों पर अपना सिर रख कर अपने आँसुओं से धो देती उन्हें। रेणु रानी माँ के पाँवों पर सिर पटक कर अनुनय-विनय करती। रानी माँ को मना लेती रेणु। रानी माँ भी तो स्त्री है। उसकी छाती में भी दिल है। उस दिल ने भी कभी किसी को प्यार किया होगा। रानी माँ सब समझ जाती। बात मान जाती रानी माँ। वह एक बार लौट कर आया तो होता ! केवल एक बार ! किन्तु उसने तो सुध ही नहीं ली रेणु की !!

रेणु आँसू पोंछ कर रानी माँ के पास पहुँची। किन्तु उसके सामने जाते

ही रेणु की आँखों में फिर आँसू आ गए। गला भर आया। मुख से शब्द नहीं निकला। रानी माँ ने पुचकार कर पूछा : "क्या बात है, बेटी रेणु !"

रेणु ने सिसक कर कहा : "एक बार मेरे बाबू की खोज तो करवा लो, रानी माँ !"

"अरी बावली बेटी ! कहाँ खोज करवाऊँ उसकी ? जने कौन था वह, कहाँ का रहने वाला ? कलकत्ते में किसी का पता निकलता है ? तूने उसका ठिकाना भी तो पूछ कर नहीं रक्खा।"

"मुझे क्या मालूम था कि वे इस प्रकार चले जाएंगे।"

"फिर कभी किसी से परीत लगे तो ऐसी भूल मत करना, रेणु !"

रेणु को जैसे चोट मार दी रानी माँ ने। परीत क्या रोज़-रोज़ की जाती है ? दिल की बस्ती क्या एक बार उजड़ कर दोबारा बसी है किसी की ? रेणु के दिल में कोई दूसरा बाबू बसेगा ही कैसे ? उस बैरी की स्मृति क्या कभी अपना स्थान छोड़ेगी ? उसकी सूरत क्या कभी आँखों को सूनी करके जाएगी ? रेणु उठ कर चली आई रानी माँ के पास से।

सहसा रेणु के मन में एक भय की भावना जागी। वे कहीं रुग्ण तो नहीं हो गए हैं ? कहीं उनको कुछ हो तो...नहीं, नहीं ! ऐसी अशुभ बात रेणु को नहीं सोचनी चाहिए। किन्तु भाग्य का क्या भरोसा ? पलक भपकते...नहीं नहीं ! उनके अमङ्गल की बात...किन्तु कुछ हुआ है अवश्य। नहीं तो ऐसे निर्दयी नहीं थे वे। एक बार भी तो उन्होंने रेणु के प्रति बेरुखाई का व्यवहार नहीं किया था। कभी एक कठोर शब्द नहीं कहा था रेणु से। रेणु की एक बात तक नहीं टाली थी। तो फिर...रेणु का हृदय फटने लगा। और वह कैसी असहाय थी ! उनकी खोज-खबर लेने भी नहीं जा सकती थी। अन्यथा...

सांझ के समय ननकू नित्य-प्रति आकर रेणु के कमरे में कुछ मिनट तक बैठता था। वह इधर-उधर की बातें करके रेणु के मन की थाह लिया चाहता था। रेणु को हँसाना चाहता था ननकू। जिस दिन वह हँस देगी उस दिन ननकू समझ लेगा कि लाइन क्लीअर है और स्टेशन पर दूसरी ट्रेन आ सकती है।

बहुत दिन से रेणु ने ननकू की दलाली नहीं बनवाई थी। रेणु नई होने

के कारण ननकू का लाया हुआ बाबू बैठाती थी तो ननकू की मोटी दलाली बनती थी। किन्तु वह एक बाबू क्या आ मरा कि ननकू की रोजी ही मारी गई। उस बाबू के चले जाने पर ननकू मन-ही-मन बड़ा प्रसन्न था। चलो, पत्ता कटा मरदूद का !

रेणु ने किन्तु आँख उठा कर भी नहीं देखा था ननकू की ओर। उस दिन तक। उस दिन ननकू आया तो वह पूछ बैठी :

"मेरे बाबू को खोज लाओ, ननकू !"

ननकू ने लाचारी जताई : "कहाँ से खोज लाऊँ, माँ !"

"चेष्टा तो करो !"

"चेष्टा क्या कम की है, माँ ! माँ का दुख क्या ननकू से देखा जाता है ? सारा कलकत्ता छान मारा मैंने। एक-एक गली देख ली। एक-एक घर में घूम आया। किन्तु बाबू को न जाने क्या धरती निगल गई !"

रेणु को ज्ञात नहीं था कि उसके कहे बिना और उसको जताए बिना ननकू ने इतना प्रचण्ड परिश्रम किया है। आज ननकू की बात सुन कर वह नरम पड़ गई। अच्छा आदमी है ननकू। रेणु ने डबडबाई आँखों से देखा ननकू की ओर। उन आँखों में आभार का भाव था। ननकू की हिम्मत बँध गई। वह बड़े दुलार के स्वर में बोला : "एक बात कहूँ, माँ ! बुरा नहीं मानो तो कहूँ।"

रेणु बोली : "कह दो, ननकू !"

"माँ ! आप कब तक अपना यह हाल किए बैठी रहेंगी ?"

"तो क्या करूँ ?"

"उस बाबू को भूल जाओ।"

"कैसे भूल जाऊँ ? बैरी को भूला भी जाता हो !!"

"एक-आध पेग पी लिया करो, माँ ! पीने से ग़म ग़लत हो जाता है।"

रेणु ने कोई उत्तर नहीं दिया। किन्तु वह ननकू से चिढ़ी भी नहीं। बेचारा संवेदना से द्रवित होकर कह रहा था वह बात। ननकू की हिम्मत और बढ़ गई। वह बोला : "माँ ! आप ठीक समझें तो...

ननकू बीच में ही रुक गया। रेणु ने कहा : "रुक क्यों गए, ननकू ! कहो ना क्या कह रहे थे।"

"कई बाबू सिर हो रहे हैं। कहते हैं रेणु के पास बैठेंगे। आप कहें तो...

"नीचे के तल्ले में किसी के पास बैठा दो, ननकू!"

"नीचे के तल्ले में आने वाले बाबू होते तो आप से नहीं कहता, माँ! वे सब आपके ही मुरीद हैं। आपके ही नाम की माला जपते हैं।"

"मैं सोच कर देखूँगी, ननकू! इस समय तुम जाओ।"

रेणु के स्वर में क्रोध नहीं था। द्वेष भी नहीं। एक शान्त गाम्भीर्य ही भरा था। ननकू का मन आशा से हरा हो उठा। उसने तुरन्त ही रानी माँ को सुना दिया वह समाचार। चुटकी बजा कर बोला: "आप देखती जाइए, मालकिन! रेणु को यों पटा लूँगा।"

एक दिन नीचे के तल्ले की पद्मा और कनक आ बैठीं रेणु के पास। इधर उधर की बातें करके कनक बोली: "रेणु! ऐसा क्या जादू था तेरे उस बाबू में जो तू उसके पीछे जोगन बनने जा रही है?"

रेणु ने उत्तर नहीं दिया। वह उन लड़कियों से डरती थी। वे ही तो थीं वे जिन्होंने उस रात उसको सीढ़ियों पर घसीटा था। पद्मा रेणु को चुप देखकर बोली: "अरी कनक! कोई-कोई बाबू...

रेणु ने कानों में अंगुलियाँ दे लीं। पद्मा ने बड़ी ही अश्लील बात कही थी। बड़े ही ग्राम्य शब्दों में। कनक ने पद्मा की बात को आगे बढ़ाया: "अरी रेणु! बस इतनी-सी बात के लिए हायतोबा मचा रखी है। मेरे पास एक हिन्दुस्तानी बाबू आता है। वह भी...

पद्मा ने सुझाया: "तो कनक! उसको तू रेणु के पास भेज दे आज।"

"भेज तो दूँ। किन्तु डर लगता है। रेणु यदि उसको भी पकड़ कर बैठ गई तो...

"तेरे लिए और खोज दूँगी। ननकू को कहने की देर है। ऐसा बाबू लाएगा जो...

रेणु उठकर भाग निकली। अपने ही कमरे के बाहर। पद्मा और कनक के अट्टहास से कमरा गूँज रहा था। कैसी परिपूर्ण तृप्ति की पुट थी उस अट्ट-में!

और इस प्रकार प्राय: बीस दिन बीत गए। सुधीन नहीं आया। न रेणु

ने ही अपनी सुध ली। तब एक दिन रानी माँ ने पूछ लिया : "रेणु ! तू अब कीबार अलग नहीं हुई, बेटी !"

रेणु ने लजाकर कहा : "अभी तो नहीं, रानी माँ !"

"पिछले मास किस किस दिन हुई थी ?"

"सुदी की चौथ को।"

और रानी माँ ने अपना माथा पीट लिया। वह चीत्कार के स्वर में बोली : "अरे तू तो डूब गई, हरामजादी !"

रेणु की समझ में नहीं आई वह बात। उसने घबराकर पूछा : "बात क्या है, रानी माँ !"

रानी माँ चिल्लाई : "तेरा सत्यानाश कर गया वह बाबू ! अब डॉक्टर चार-सौ पाँच-सौ मांगेगा। मैं कहाँ से दूँगी ?"

रेणु फिर भी नहीं समझी। मुँह बाए रानी माँ की ओर देखती रही। रानी मा ने फिर उसे फटकारा : "जा दूर हो जा मेरी आँखों के सामने से ! हरामजादी कल तो आई थी इस बाड़ी में। और आज पेट कर लिया !!"

रेणु को अगले दिन एक नर्सिंग-होम में पहुँचा दिया गया। रेणु को किसी बात का ज्ञान नहीं था। लेडी डॉक्टर ने उसको जो दवा दी वह उसने चुप-चाप ले ली। और फिर उसका ऑपरेशन हो गया।

नारी को बनाते समय विधाता ने दो ही वरदान दिए थे। प्रणय एवं वात्सल्य। रेणु के जीवन में दोनों ही नहीं रह पाए। प्रणय का प्रसाद पल-भर में छिन गया था। और वात्सल्य की तो बात ही नहीं जान पाई रेणु। माँ बनने के पूर्व ही उसको बंध्या बना दिया गया।

छठा परिच्छेद

नर्सिंग-होम में पड़ी थी रेणु। गौरी नित्यप्रति उससे मिलने आती थी। रेणु के आँसू रुक गए थे। किन्तु सूखे नहीं थे वे आँसू। गौरी को देखते ही वह रोने लग जाती थी। गौरी उसको समझाती थी, उसको दुलारती थी, उसका मन बहलाने की चेष्टा करती थी। किन्तु रेणु का मन नहीं संभला।

एक दिन गौरी ने डाँटा : "रेणु ! तू कभी सयानी भी होगी, अभागिन !"

रेणु ने कहा : "क्या करूँ, गौरी ! मरा मन भी मानता हो।"

"मन को मनाती ही क्यों है तू ? मन से तेरा क्या सरोकार है ?"

"भगवान ने मन दे दिया मुझे ! तू ही बता मैं इसे कैसे विलीन कर दूँ।"

"भगवान ने तुझे देह भी तो दी है।"

"देह का क्या मोल है, गौरी !"

"यही तो तेरी भूल है, रेणु ! जिस मन को तू इतना मानती है उसी का कानी-कौड़ी मूल्य नहीं है। देह तो तेरे बहुत काम की चीज़ है।"

"ऐसा मत कह।"

"क्यों नहीं कहूँ ? सच ही तो कह रही हूँ। रेणु ! जिस दिन तू यह मान लेगी कि तू केवल देह है, मन-वन कुछ नहीं, उस दिन तुझे किनारा मिल जाएगा।"

रेणु चुप हो गई। गौरी की बात को समझने का प्रयास कर रही थी वह। गौरी ने एक क्षण रुककर कहा : "देख तो कैसी तपे सोने-सी देह पाई है तूने। दर्पण के सम्मुख खड़ी होकर कभी निहारे भी हैं अपने नखशिख ? भगवान भी रूप-यौवन उसी को देते हैं जो उसका मोल नहीं जानती। मुझे

मिली होती तेरे जैसी देह, तेरे जैसा रूप-यौवन...

"तो तू क्या करती, गौरी !"

"मैं तहलका मचा देती, रेणु ! अभी भी देख ले मुझे। काली-कलूटी देह को धो-माँज कर, निरगुने नखशिख को बना-सँवार कर बड़े-बड़े बाबुओं को बस में कर लेती हूँ।"

"यह नाटक करते समय तुझे लाज नहीं आती ?"

"नाटक ! नाटक कैसा ?"

"नाटक ही तो है। जिनको तू मन से नहीं मानती उनको तू अपनी देह दे देती है।"

"फिर वही मन की बात !!"

"भगवान ने क्या तुझको मन नहीं दिया, निगोड़ी !"

"दिया क्यों नहीं। दिया तो था। किन्तु मैंने लौटा दिया।"

"क्यूँ ?"

"मेरे काम की चीज़ ही नहीं थी वह।"

"तो तू जीती किस प्रकार है ?"

"देह के सहारे।"

"देह के सहारे भी कोई जी सकता है ?"

"हाँ, जी सकता है। अधिक सुख के साथ जी सकता है।"

"मैं नहीं मानती।"

"तू जानती ही नहीं।"

"तो तू समझा दे।"

"देख, रेणु ! तेरे मन में जिस प्रकार ममता उमड़ती है, दुख-सुख का ज्वार आता है, इच्छा-अनिच्छा की अनुभूति होती है, उसी प्रकार तेरी देह में भी अनेक अनुभूतियों की क्षमता है। अपनी देह को तू अपने मन के बन्धन से मुक्त कर दे। और तदनन्तर तेरी देह तुझे जिस भी पथ पर ले जाए तू उसी पथ पर चली जा। आँखें मूँद कर।"

"तो कहाँ जा पहुँचूँगी ?"

"यह मैं नहीं जानती। तेरी देह तुझे कहाँ ले जाएगी, यह बतलाना मेरे

बस की बात नहीं। तुझे स्वयं ही चलकर देखना होगा।"

"अपने बाबू के साथ जो मैं इतनी दूर तक गई, उसके क्या कोई मायने नहीं? उस पथ से क्या मैं लौट आऊँ?"

"लौट आने को मैं कब कहती हूँ? उसी पथ पर चलने की कह रही हूँ। और उस जाने के मायने क्यों नहीं हैं? किन्तु तू सही मायने समझने की चेष्टा करे तब तो।"

"मेरी भूल क्या है?"

"देह के सम्बन्ध को मन का सम्बन्ध समझ लेना।"

रेणु बिस्तर पर लेटी हुई बातें कर रही थी। गौरी की बात सुनकर वह उठकर बैठ गई। जैसे गौरी ने उसके मुख पर कस कर चपत चला दी हो। गौरी रेणु की झुँझलाहट को समझ गई। वह अपने स्वर को और भी प्रखर करके बोली: "उस बाबू ने तेरी देह को सुख दिया था, रेणु! वह बाबू चला गया। और तू रो-रोकर बावली हो गई!! तूने एक बार भी यह न सोचा कि तेरी देह तो तेरे पास ही है। वह बाबू तेरी देह तो नहीं छीन ले गया?"

रेणु बिगड़ उठी। वह आँखें निकालकर बोली: "मैं तेरा मुँह नहीं देखना चाहती, हरामजादी! जा चली जा यहाँ से! अभी चली जा! नहीं तो तेरी जीभ खींच लूँगी!!"

गौरी बैठी-बैठी हँसती रही। रेणु फिर तकिए में मुँह छुपाकर रोने लगी। गौरी ने कहा: "अपने मन को मार नहीं सकती तो उसे भगवान के भरोसे कर दे, रेणु! तब तुझे कुछ मिल जाएगा। मनुष्य में मन लगाकर तो तू ठगी ही जाएगी। बार-बार। और फिर एक दिन..."

गौरी चली गई। अपनी बात को पूरा किए बिना। रेणु के मन ने गवाही दी कि गौरी की बात में सच्चाई है। और वह नर्सिंग-होम से लौटकर रानी माँ की बाड़ी में आई तब तक वह बदल चुकी थी। गौरी का दिया हुआ गुरु-मन्त्र उसने स्वीकार कर लिया था। मन मार लिया था उसने।

बाहर के संसार में सभी कुछ पहिले जैसा था। वही बाड़ी। वही कमरा। वही रानी माँ। वही गौरी। कनक, काजल, प्रतिमा, पद्मा—सब की सब वेही थीं। ननकू भी। दिन-रात, सुबह-शाम, हवा पानी, चाँद-सूरज—कुछ भी

नहीं बदला था। किन्तु रेणु की आँखों में अब कुछ भी पहिले जैसा नहीं रह गया था।

गौरी ने रेणु को देखकर पूछा : "तुझे हुआ क्या है, रेणु !"

रेणु ने कहा : "कुछ भी तो नहीं हुआ, गौरी ! कुछ बदली हुई दिखाई देती हूँ क्या ?"

गौरी चुप हो गई। वह नहीं चाहती थी कि रेणु के मर्म पर अँगुली टिकाए। घाव के फिर से हरा हो जाने का भय था। काल के धर्म से भर गया था वह घाव। किन्तु मन के धर्म से वह घाव अभी-भी कच्चा था। छेड़ते ही उसमें पड़ी पीब बहकर निकल सकती थी।

रानी माँ बड़े ध्यान से रेणु के रँग-ढंग देख रही थी। ननकू नित्यप्रति किसी-न-किसी पुराने बाबू का नाम लेकर रानी माँ को ललचा रहा था। किन्तु रानी माँ का साहस नहीं हुआ कि रेणु को टोककर देख ले। जाना-पहिचाना पुराना बाबू आए और रेणु कुछ बेअदबी कर बैठे तो बाड़ी बदनाम हो जाएगी। वह ननकू को नए बाबू लाने का परामर्श देती रही।

तब रेणु ने ही अपनी ओर से प्रस्ताव कर दिया। नर्सिंग-होम से लौटने के एक सप्ताह उपरान्त। रेणु बोली : "मेरे पास बाबू क्यों नहीं आते, रानी माँ !"

रानी माँ का मन-मयूर नाच उठा। वह रेणु के सिर पर हाथ रखकर बोली : "तेरा जी तो ठीक हो जाए, रेणु ! बाबू भी आ जाएँगे। बाबू आने में अभी कौन-सी देर हुई है ?"

"मैं तो ठीक हो गई, रानी माँ ! आज से ही..." रेणु ने सिर झुका लिया।

रानी माँ नाटक करने लगी। वह बोली : "अरी ऐसी भी क्या जल्दी है, रेणु बेटी ! अभी तो...

रेणु ने बीच में ही कह दिया : "बहुत दिन हो गए निठल्ली बैठे-बैठे। पड़े-पड़े जी भी तो नहीं लगता, रानी माँ !"

रानी माँ ने ध्यान से रेणु का हाव-भाव देखा। उसको एक अपूर्व परिवर्तन दिखाई दिया रेणु में। वह तो इतने दिन से इसी परिवर्तन की बाट जो

रही थी।

साँझ के समय ननकू एक बड़े बाबू को ले आया। बाड़ी का पुराना कस्टमर था वह। रानी माँ ने रेणु को समझा दिया था कि उस बाबू के साथ वह बहुत ही भद्र व्यवहार करे। बाबू यदि उस पर प्रसन्न हो गया तो उसके वारे-न्यारे कर देगा। फिर रेणु को दूसरा बाबू करने की विपता नहीं झेलनी पड़ेगी।

रेणु ने अपने कमरे के द्वार पर खड़ी होकर बड़े बाबू का स्वागत किया। मुख-कमल पर मधुर मुस्कान छिटका कर। किन्तु यह देखे बिना कि आने वाला कौन है, और कैसा है। माथे में लगी मिट्टी की आँखें सब-कुछ देख रही थीं। किन्तु रेणु के मन की आँखें तो बन्द हो चुकी थीं। उन आँखों को तो किसी ने फोड़ डाला था। अँगुली डाल कर फोड़ डाला था।

बड़े बाबू को पसन्द आ गई रेणु। और दूसरी रात से उसने रेणु को बाँधा बना लिया। फिर तो महीना आरम्भ होते ही रानी माँ की मुठ्ठी गरम होने लगी। ढेर-सारे रुपए देता था बड़ा बाबू। रेणु पर खरच करता था सो अलग।

रेणु की देह का फिर से सिंगार होने लगा। और गौरी की सहायता के बिना ही। रेणु अब स्वयं ही अपने आपको सजा लेती थी। सिनेमा में देखी हुई नई-नवेली स्टार की नाई। बाबू को संकेत-भर करने की देर थी। वह रेणु को जिस रूप में देखना चाहता था, रेणु वही रूप धारण कर लेती थी।

बाबू के कहने से मद भी पी लेती थी रेणु। बीअर, ह्विस्की, ब्राण्डी, जिन। किन्तु उसको नशा नहीं हो पाया किसी दिन। मरा हुआ मन भी देह के भीतर वह नशीली पेय जाते देखकर जाग उठता था। और रेणु की रख-वाली करता था वह मरा हुआ मन। इसलिए रेणु कभी भी विचलित नहीं हुई। मद पीकर भी उसके आचरण में राई-रत्ती का हेर-फेर नहीं हुआ कभी। मुख से कभी एक अश्लील शब्द नहीं निकला।

मनुष्य के अन्तर में देह के प्रति अन्यत्व का भाव जागने पर भी एक मुक्ति की अनुभूति हुआ करती है। मैं और हूँ, मेरी देह और है। देह का

धर्म और है। मेरे धर्म से स्वतन्त्र धर्म। देह का अपना स्वधर्म। देह यदि अपने स्वधर्म को निभाए तो मेरा कुछ नहीं बनता-बिगड़ता। इस प्रकार का तर्क करके भी मनुष्य एक निष्कर्ष पर जा पहुँचता है।

रेणु के मन में ठीक इस प्रकार का तर्क नहीं उठा। किन्तु यह तर्क कर लेने के उपरान्त भी जिस भाव की उपलब्धि दुष्कर है, उस भाव को रेणु ने पा लिया। प्राण-पण से। केवल एक चोट खाकर। अब रेणु की देह संसार में हँस-खेल सकती थी। रेणु के मन को अपने पीछे घसीटने का हठ किये बिना।

और खूब हँसी-खेली रेणु की देह। रेणु को अब उस बाड़ी में बंद रहने की आवश्यकता नहीं थी। रानी माँ ने उसको स्वाधीन कर दिया था। और रेणु का बड़ा बाबू प्रायः नित्य ही रेणु को बाहर ले जाने लगा। इच्छा होने पर वह गौरी के साथ भी घूम-फिर आती थी। कलकत्ते का कोना-कोना रेणु के लिए खुला था। और बड़े बाबू ने कहा था कि पूजा की छुट्टियों में वह रेणु को अपने साथ लेकर बम्बई जाएगा।

रेणु ने सैकड़ों सिनेमा देखे। बंगला के, हिन्दी के, अंग्रेज़ी के। जिस सिनेमा को वह समझती नहीं थी उसको भी देख आती थी रेणु। रेणु ने बड़े बाबू की मोटर में बैठकर कलकत्ते के भीतर और कलकत्ते के आस-पास समस्त दर्शनीय स्थान देख डाले। रेस भी देखी। रेस में दाँव भी लगाकर देखा। निउ मार्केट में जाकर बहुमूल्य वस्त्र खरीदे रेणु ने। बऊ बाजार में जाकर बहुमूल्य गहने भी। रेणु बड़े-बड़े होटलों के डाइनिंग रूम देख आई। बड़ी-बड़ी क्लबों के कारनामे भी।

किन्तु रेणु का मन कहीं नहीं उलझा। उसका मन अब सब समय उसके पास रहता था। मरा हुआ मन था वह। किन्तु रेणु उसी के साथ रह कर एकान्त-सेवन करती थी। गौरी के अतिरिक्त कोई भी नहीं जानता था कि रेणु का मन भर चुका है। सब का यही अनुमान था कि रेणु का मन मुक्त होकर मौज कर रहा है। और रेणु ने भी कभी किसी के इस अनुमान का खण्डन नहीं किया। कोई उसके विषय में कुछ भी सोचता। उसको क्या मतलब था! उसके विषय में तो उसका अपना अभिमत ही उपादेय था।

एक दिन गौरी ने पूछा : "अब तू हँसती क्यों नहीं, कलमुँही !"

रेणु ने कहा : "हँसती तो हूं, गोरी !"

"उस हँसने की मैं नहीं कहती, रेणु ! संसार के सामने तो सभी हँसते हैं। रोते भी है, हँसते भी हैं। किन्तु वह हँसना-रोना तो किसी काम का नहीं। तू अपने साथ रह कर क्यों नहीं हँसती ?"

"रोती भी तो नहीं हूँ।"

"रोया भी कर, रेणु ! जो रो सकता है, वही हँस भी सकता है। हँसना-रोना तो एक साथ चलते हैं, रेणु ! तूने रोना छोड़ दिया तो तेरा हँसना भी छुट गया।"

"मुझे तो हँसना-रोना सब निरर्थक दिखाई देने लगा। क्या होगा हँस-रो कर ?"

"यह अवस्था है तो बहुत ऊँची। किन्तु..."

गौरी चुप हो गई। रेणु ने पूछा : "किन्तु क्या, गौरी !"

गौरी ने उत्तर दिया : "मन की समस्त कटुता चली जाए तभी तो इस अवस्था का पूरा आनन्द प्राप्त होता है। तेरे मन में तो कटुता भरी है, कल-मुँही ! ऐसे पिलपिले मन का तू क्या करेगी ?"

"होने दे पिलपिला मन। मेरे मन से तो किसी को सरोकार नहीं। मेरा मन मेरे पास ही पड़ा रहता है। वह किसी और से कुछ कहने तो कभी जाता नहीं।"

"यही तो तेरी भूल है, रेणु ! तेरे मन का किसी और से कुछ सरोकार न हो। तुझसे तो सरोकार है ?"

"मुझसे भी क्या सरोकार है ?"

"तू नहीं समझेगी।"

"तो तू समझा दे ना, गौरी ! तूने तो मुझे बहुत कुछ समझाया है।"

"ऐसे समझाने से नहीं समझा जाता। एक और चोट पड़ेगी तब तू अपने-आप समझ जाएगी।"

"तू तो मुझको कोस रही है, कलमुँही ! बता तो मैंने तेरा क्या बिगाड़ा है ? तू क्यों हर घड़ी मेरे अमङ्गल की कामना किया करती है ?"

"इसलिए कि मैं अपनी रेणु को उस पार पहुँची हुई देखना चाहती हूँ।"

"उस पार कहाँ ?"

"जहाँ मैं स्वयं नहीं जा सकी।"

"कहाँ नहीं जा सकी ?"

"जहाँ मनुष्य के जीवन में भगवान के अतिरिक्त कुछ भी नहीं रह जाता।"

"तू क्यों नहीं जा सकी ?"

"मेरे कर्म-बन्धन का क्षय नहीं हुआ, रेणु !"

"तो क्या मेरे कर्म-बन्धन का क्षय हो गया ?"

"मुझे तो ऐसा ही दीख पड़ता है।"

"कैसे जाना तूने ?"

"अच्छा एक बात बता दे। तू बड़े बाबू के साथ सारे संसार का सुख देखकर क्या-क्या सोचा करती है ?"

"कुछ भी नहीं सोचती।"

"यह नहीं सोचती कि यह सुख चला गया तो तू लुट जाएगी ?"

"नहीं।"

"तभी तो कहती हूँ कि तेरे कर्म-बन्धन का क्षय हो गया !"

"मैं समझी नहीं, गौरी !"

"संसार के सुख की लालसा—यही तो बन्धन है, रेणु ! यह लालसा मिट जाए तो मुक्ति अपने आप मिल जाती है।"

"तेरी लालसा नहीं मिटी ?"

"नहीं मिटी।"

"इतना सब भोग कर भी ?"

"फिर भी नहीं मिटी।"

"कब मिटेगी ?"

"मैं नहीं जानती।"

"तू तो सब कुछ जानती है, गौरी !"

"नहीं, रेणु ! मैं अपने मन की थाह लेना नहीं जानती। औरों के मन

की थाह लेना ही सीखी हूँ।"

"यह विद्या तूने सीखी कहाँ ?"

"अपने गुरु से।"

"कहाँ रहते हैं वे ?"

"यहीं। इसी कलकत्ते में। तू चलेगी उनके पास ?"

"तू ले चलेगी तो जरूर चलूँगी।"

"तो चलना किसी दिन।"

"आज ही क्यूँ नहीं ?"

"आज तो समय नहीं रहा, रेणु ! बड़े बाबू अब आया ही चाहते हैं।"

"उनके पास मैं फोन कर देती हूँ। वे देर करके आ जाएँगे।"

गौरी सहमत हो गई। रेणु ने बड़े बाबू को टेलीफोन करके कह दिया कि वे दो घण्टा देर से आएँ। बाबू मान गए। और गौरी रेणु को साथ लेकर चल पड़ी।

: २ :

रेणु के मन में अपार कौतूहल जाग उठा था। अभी तक वह गौरी को ही अपना गुरु मानती थी। उसको यह ज्ञात नहीं था कि गौरी के भी एक गुरु हैं। गौरी के प्रति रेणु के मन में अपार श्रद्धा का स्रोत बहता था। उसका अन्तर गवाही देता था कि गौरी उसको नहीं मिलती तो वह डूब जाती। अब यह सुनकर कि गौरी के भी एक गुरु हैं, रेणु का मन उनको देखने के लिए लालायित हो उठा। गौरी इतनी ऊँची है। तो उसके गुरु और भी ऊँचे होंगे ? न जाने कितने ऊँचे !

गौरी रेणु को लेकर कालीघाट जा पहुँची। और रेणु को काली माँ के सामने खड़ा करके वह बोली : "देख ले, रेणु ! ये हैं मेरे गुरु !"

रेणु प्रथम बार काली माँ के मन्दिर में आई थी। किन्तु गौरी की बात सुनकर वह माँ को प्रणाम करना भूल गई। वह विस्मय से नेत्र विस्फारित करके गौरी से बोली : "ये काली माँ ! ये हैं तेरी गुरु ? धुत्, कलमुँही ! तू तो मेरे साथ ठट्ठा कर रही है।"

गौरी ने कहा : "नहीं, रेणु ! सच कह रही हूँ। मैंने तो इन्हीं से सब

कुछ सीखा है।"

"ये तुझ से बातें करती हैं ?"

"हाँ, खूब बातें करती हैं। मेरे मन में जो भी प्रश्न उठता है उसीका उत्तर दे देती हैं ये। सारी शंकाओं का समाधान कर देती हैं।"

रेणु की कुछ समझ में नहीं आया। उसने मौन रहकर गौरी के बतलाए मार्ग से माँ की उपासना कर ली। फिर वह गौरी के साथ बाहर चली आई। उसके मन में एक अपूर्व शान्ति व्याप्त थी। सहसा उसे ऐसा प्रतीत होने लगा कि उसके मन का पिलपिलापन चला जाएगा।

बाहर कीर्तन हो रहा था। गौरी रेणु का हाथ पकड़ कर गाने वाली के सामने खड़ी हो गई। अधिक भीड़ नहीं थी वहाँ। पचास-सौ स्त्री-पुरुष फुट-पाथ पर बैठे थे। बीस-तीस लोग इधर-उधर खड़े थे। किन्तु गाने वाली सब ओर से निवृत्त होकर आँखें मूंदे गा रही थी। और अश्रुधारा बहा रही थी। उसके मुख-मण्डल से न जाने कैसा एक अपूर्व आनन्द झर रहा था। रेणु मन्त्रमुग्ध-सी उसकी ओर देखने लगी। और मन लगाकर कीर्तन सुनने लगी।

गौरी ने रेणु के कान में कहा: "अब तू अपना प्रश्न पूछ ले, रेणु! मन ही मन। और फिर देख कि तुझे उत्तर मिलता है या नहीं।"

रेणु ने पूछा: "उत्तर देगा कौन ?"

"यह कीर्तन वाली।"

"इसको तो संसार की ही सुध नहीं है, गौरी! यह मेरे प्रश्न का उत्तर कैसे दे देगी ?"

"संसार की सुध नहीं रहती तभी तो प्रश्नों के उत्तर मिलते हैं। तू पूछ तो। मन ही मन। मुझसे न कहियो कि क्या पूछा है।"

"क्यों ?"

"काली माँ उसी प्रश्न का उत्तर देती हैं जो केवल उनसे ही पूछा जाता है। मनुष्य से पूछे जाने वाले प्रश्न का उत्तर वे नहीं देतीं।"

रेणु ने आँखें मूंदकर मन ही मन प्रश्न पूछा: "माँ! मेरे पाप की तो परिधि नहीं रह गई। मैंने पति-परमेश्वर के साथ प्रवञ्चना की। अपने कुल में कलंक लगा दिया मैंने। जाति-बान्धव मुझे देखकर लाज से मर जाएँगे।

और मुझ पापिन की परीत भी निष्फल निकली । अब मैं क्या करूँ, माँ ! कहाँ जाऊँ ? क्या मेरे लिए भी कोई किनारा है ?"

रेणु ने अपना प्रश्न पूछ कर आँखें खोलीं । और वह निर्निमेष नयनों से कीर्तन गाने वाली की ओर देखने लगी । कुछ क्षण उपरान्त कीर्तन वाली ने भी अपनी आँखें खोल दीं । जो कीर्तन वह गा रही थी, उसको समाप्त करके । फिर कीर्तन वाली ने अपलक नेत्रों से अपने सामने उपस्थित श्रोताओं की ओर निहारा । मानो वह किसी को खोज रही हो । रेणु भी उसकी ओर देख रही थी । दोनों की दृष्टियाँ मिलीं । और कीर्तन वाली ने अपने नयन फिर मूँद लिए । और दूसरे क्षण खञ्जनी के स्वर के साथ-साथ उसके कण्ठ से एक और कीर्तन की सुधाधार बह चली । वह गा रही थी :

बँधू ! और कहें अब क्या हम !
जीवन मरण, जन्म जन्मान्तर
प्राणनाथ होना तुम !!
चरण तुम्हारे, प्राण हमारे,
बांधें प्रेम की फाँसी !
सभी समर्पण, एकमना हो,
निश्चय हो गई दासी !!
कहता था मन, तीन भवन में,
और कौन अब मेरा !
राधा कह, कोइ सुधि नहीं लेता,
किस सँग करूँ बसेरा !!
इस-उस कुल में, दुकुल गोकुल में,
किसे कहूँ मैं अपना !
शीतल समझ, शरण ले ली है,
चरणकमल में रखना !!
छल न करो, हम अबला अखला,
यही उचित है तुमको !

नयन-कोर से, यदि न निहारा,
और नहीं गति हमको !!
मान गया मन, प्राणनाथ बिन,
प्राण मरण-सम हारूं !
चण्डीदास यह पारस मणि है,
गूंथ गले में डारूं।

कीर्तन समाप्त हुआ। रेणु आंखें मूंदे खड़ी थी। उसकी आँखों में आँसू चमक रहे थे। गौरी ने रेणु का कन्धा छू कर पूछा : "रेणु ! मिल गया ना तेरे प्रश्न का उत्तर ?"

रेणु ने आँखें खोल कर गदगद कण्ठ से कहा : "हाँ, गौरी ! मेरे प्रश्न का उत्तर मुझे मिल गया।"

"तो चल, अब घर जाना है।"

रेणु चुपचाप गौरी के साथ हो ली। टैक्सी में बैठकर गौरी ने पूछा : "रेणु ! अब तू मुझे भी अपना प्रश्न बतला दे।"

रेणु बोली : "दोष तो नहीं होगा, गौरी !"

"नहीं, अब कोई दोष नहीं होगा। अब तो माँ ने तुझे तेरे प्रश्न का उत्तर दे दिया है।"

रेणु ने अपना प्रश्न सुना दिया गौरी को। तब गौरी मुस्करा कर बोली : "एक दिन मैंने भी ऐसा ही प्रश्न पूछा था।"

रेणु ने पूछा : "तुझे क्या उत्तर मिला था, गौरी !"

"यही कि मेरा मन शुद्ध नहीं है। और मन के शुद्ध हुए बिना भगवान किसी को अपनी शरण में नहीं लेते।"

"तेरे मन में कौनसा काला है ?"

"फिर किसी दिन बतलाऊँगी।"

"नहीं, आज ही बतला दे, गौरी !"

"रेणु ! तू तो अपनी इच्छा से वेश्या नहीं बनी ?"

"नहीं ! मुझको तो बलात्कार करके वेश्या बनाया गया है।"

"किन्तु मैं अपनी इच्छा से वेश्या बनी हूँ। आँखें खोलकर। गणित

करके। तुझ में और मुझ में यही तो अन्तर है, रेणु!"

रेणु पूछना चाहती थी कि गौरी वेश्या क्यों बनी। किन्तु गौरी ने कुछ भी बतलाने से इन्कार कर दिया।

अगले दिन से रेणु ने एक संगीत-शिक्षक रख लिया। बड़े बाबू से कह कर। अब वह इधर-उधर जाना नहीं चाहती थी। उस्ताद से शुद्ध संगीत के स्वर ताल सीखती थी रेणु। किन्तु एकान्त में वह कीर्तन के स्वरताल का अभ्यास करती थी।

महीनों बीत गए रेणु को संगीत की शिक्षा लेते। और एक दिन वह अपने कमरे में कीर्तन गाने बैठी तो उसकी आँखों से अश्रुधार बह चली। हृदय विह्वल हो गया।

: ३ :

रेणु स्विमिंग पूल से निकलकर किनारे पर पड़ी आरामकुर्सी में सुस्ता रही थी। आज वह बड़े बाबू के बहुत हठ करने पर उसके साथ स्विमिंग क्लब में चली आई थी। और उसको अच्छा ही लगा था वहाँ आना। तैरना उसने बचपन में सीखा था। आज इतने दिन उपरान्त गहरे पानी में उतरकर मछली के समान मॅडराना उसके मन को भा गया।

किन्तु तैरने का अभ्यास नहीं था उसको। इसलिए वह शीघ्र ही थक गई। बड़ा बाबू अभी भी तैर रहा था। रेणु की इच्छा थी कि वह कुछ क्षण उप-रान्त फिर से पूल में उतरेगी।

इसी समय एक अन्य पुरुष उसके पास पड़ी दूसरी आरामकुर्सी पर आ बैठा। पूल से निकल कर। बेथिंग कॉस्ट्यूम पहिने हुए था वह। आँखों पर गॉगल्ज लगे थे।

रेणु ने ध्यान नहीं दिया उस पुरुष की ओर। किन्तु वह रेणु की ओर घूर-घूर कर देख रहा था। तब एक बार उन दोनों की आँखें चार हो गई। और फिर रेणु ने अपना मुख फेर लिया। वह वहाँ से उठकर भाग जाना चाहती थी। किन्तु भागा न गया रेणु से। वह मुँह फेर कर वहीं पर बैठी रही। और वह पुरुष भी उसकी ओर घूरता रहा।

रेणु का मन कह रहा था कि उसने उस पुरुष को पहिले भी देखा है।

किन्तु उसकी स्मरण-शक्ति ने उसका साथ नहीं दिया। वह तय नहीं कर पाई कि उस पुरुष को कहाँ देखा था, कब देखा था। और वह बैठी-बैठी अपनी मानसपटी पर उभरती हुई अनेक पुरुष-मूर्तियों का निरीक्षण करने लगी। एक बड़ी-सी भीड़ में से उस पुरुष को पृथक करने का प्रयास कर रही थी रेणु।

इसी समय रेणु का बाबू भी पूल से निकल कर वहाँ आ बैठा। रेणु को म्लान-मना सी देखकर उसने पूछा : "बहुत थक गई क्या, रेणु!"

"रेणु ने उत्तर नहीं दिया। बाबू ने सिगरेट निकालकर उसकी ओर बढ़ा दी। रेणु ने सिगरेट की ओर हाथ नहीं बढ़ाया। उसका बाबू भूल कर रहा था। दूसरे पुरुष के सामने उसको सिगरेट देने की चेष्टा करके। बाबू ने रेणु का मुख देखा। और फिर वह अपनी भूल समझ कर बोला : "अरे! मैं तो भूल ही गया कि तू लड़की है। बेथिंग कॉस्ट्यूम में लड़का-सी लग रही है तू। इसलिए सिगरेट ऑफर कर बैठा।"

बाबू हँसने लगा। किन्तु रेणु से नहीं हँसा गया। यह जान कर भी कि उसका बाबू उसे हँसाना चाहता है। और समय होता तो वह हँस देती। किन्तु आज उससे नहीं हँसा गया। उसकी आँखें अपने बाबू की ओर थीं। किन्तु उसका मन उस दूसरे पुरुष में पड़ा था। वह पुरुष अब भी उसको घूर रहा था।

पुरुष ने रेणु के बाबू से कहा : "एक्स्क्यूज मी, मिस्टर! आपसे एक बात पूछ सकता हूँ?"

बाबू ने कहा : "जी, एक नहीं, दस बातें पूछिए।"

"क्या मैं जान सकता हूँ कि आप के साथ ये कौन हैं।"

"मेरी मित्र हैं?"

"मित्र माने?"

"मित्र माने मित्र।"

"सो तो मैं भी जानता हूँ। किन्तु ये हैं कौन?"

"इनका नाम है रेणुका बोस।"

"कहाँ की रहने वाली हैं?"

"इसी कलकते नगर की।"

"पति का नाम ?"

"इनका ब्याह अभी नहीं हुआ।"

"आप की फिआँसे हैं ?"

"यही समझ लीजिए।"

"इनके पिता का नाम ?"

बाबू सहमा सशंक हो उठा। उसने एक बार रेणु की ओर देखा। वह न जाने क्यों मरी-मरी जा रही थी। तब बाबू ने पुरुष से पूछ लिया : "किन्तु आप यह सब किसलिए पूछरहे हैं ?"

पुरुष ने उत्तर दिया : "यह देखने के लिए कि एक रेस्पैक्टेबल क्लब का रेस्पैक्टेबल मैम्बर कितनी देर तक झूठ बोल सकता है।"

बाबू उठकर खड़ा हो गया। उसकी इन्सल्ट की थी किसी ने। रेणु के सामने। उसको क्रोध आ गया। किन्तु पुरुष उस क्रोध की अवहेलना करके बोला :

"देखिए, मिस्टर ! आँखें लाल करने से काम नहीं चलेगा। मैंने अपनी ओर से यह सब नहीं पूछा। क्लब की ओर से ही पूछा है।"

बाबू ने कहा : "आपका आशय ?"

"क्लब के अनेक लोग जानना चाहते हैं कि आपके साथ ये कौन हैं।"

"ये मेरी गैस्ट हैं।"

"गैस्ट तो हैं। किन्तु...

"क्या मझे गैस्ट लाने का अधिकार नहीं है ?"

"जी, क्यों नहीं ? आप रोज गैस्ट लाइए ! किन्तु...

"मैं और कुछ भी सुनना नहीं चाहता।"

"किन्तु मैं कुछ कहना चाहता हूँ।"

"देखिए, मिस्टर ! मैं आपको जानता नहीं। हमारा इन्ट्रोडक्शन तक नहीं हुआ कभी। आप बिना बात मुझको क्यों डिस्टर्ब कर रहे हैं ?"

"इसके लिए माफी माँग लेता हूँ। किन्तु अपना कर्तव्य मुझे पूरा करना पड़ेगा।"

"कौनसा कर्तव्य ?"

"क्लब के अनेक मेम्बर कह रहे है कि आपकी गैस्ट भले घर की स्त्री नहीं है।"

रेणु से यह आघात नहीं सहा गया। वह उसी क्षण वहाँ से उठकर चल पड़ी। कपड़े बदलने के केबिन की ओर। किन्तु रेणु का बाबू वहीं खड़ा रहा। उसने उस पुरुष से कहा : "आपने मेरे गैस्ट की इन्सल्ट की है। मैं क्लब की कमिटी से आप की शिकायत करूँगा। आप अपना नाम बतला दीजिए।"

पुरुष हँसने लगा। फिर वह बोला : "उल्टा चोर कोतवाल को डाँटे ! शिकायत तो मुझे आपकी करनी है। आप अपना नाम बतलाइए।"

"मेरी क्या शिकायत करेंगे आप ?"

"यही कि आप बाजारू औरत को साथ लेकर क्लब में आते हैं।"

"आपने कैसे जान लिया कि वे बाजारू औरत हैं ?"

"मैंने दुनिया देखी है, मिस्टर ! वह पूल में तैर रही थी उसी वक्त मैं उसको पहिचान गया था।"

"क्या आप से भूल नहीं हो सकती ?"

"हो सकती है। किन्तु इस केस में भूल नहीं हुई।"

"आपने भूल की है। आप इसी समय मेरे साथ चलकर उनसे माफी माँग लीजिए। नहीं तो आपके लिए अच्छा नहीं होगा।"

"यदि मैंने भूल की है तो कमिटी इसका फैसला करेगी। तब मैं जरूरत समझूँगा तो माफी भी माँग लूँगा।"

"किन्तु कमिटी के सामने जाने से पहिले तो आपको मुझसे फैसला करना पड़ेगा।"

"क्या फैसला करना पड़ेगा ?"

बाबू का स्वर प्रखर हो उठा। वह अपने दोनों हाथों की मुट्ठियाँ बाँध कर उन्हें ऊपर उठाता हुआ बोला : "आप उनसे माफी माँगते है या नहीं ? अभी जवाब दीजिए ! इसी क्षण !!"

पुरुष बाबू की विकराल मूर्ति देखकर मानो डर गया। वह उठ कर बोला : "चलिए माफी माँग लेता हूँ।"

तब वे दोनों चल कर रेणु के पास आए। वह कपड़े बदल चुकी थी।

बाबू ने उस पुरुष से कहा : "माँगिए माफी ।"

पुरुष ने रेणु की ओर देखा । गॉगल्ज उतार कर । रेणु ने पुरुष की ओर देखा । और दूसरे क्षण रेणु उसको पहिचान गई । वह तो वही सेठ था जिसने उस रात मद के नशे में बेहोश रेणु को नष्ट किया था । रेणु का शरीर आपादमस्तक सिहर उठा । रोम-रोम में काँटे निकल आये । उसकी आँखों में आँसू उमड़ रहे थे ।

पुरुष ने आगे बढ़कर रेणु से पूछा : "क्या तुम रानी माँ की बाड़ी में नहीं रहतीं ?"

रेणु के बाबू ने पुरुष का हाथ पकड़ लिया । दूसरे क्षण हाथापाई होने वाली थी ।

किन्तु रेणु ने अपने बाबू का हाथ पकड़कर उसे रोक लिया । फिर वह उस पुरुष को सम्बोधित करके बोली : "सेठजी ! आप दोनों ही भद्र लोग हैं । आप मेरे कारण झगड़ा मत कीजिए । मैं चली जाती हूँ । मैंने यहाँ आ कर बड़ी भूल की । मैं भूल गई थी कि मैं कौन हूँ ।"

बाबू ने कहा : "ठहरो, रेणु ! तुम कोई भी क्यों न हो । इस आदमी को क्या अधिकार...

किन्तु बाबू की बात पूरी होने के पूर्व ही रेणु वहाँ से चल पड़ी । द्रुत पद से । भावावेश से काँपती हुई । मानो सूखा तिनका हवा में उड़कर काँप रहा हो । आँखों में उमड़ते हुए सावन-भादों का दमन करना रेणु के लिए कठिन हो रहा था ।

वह पूल के पास से उठकर आई उसी समय उसका जी चाहा था कि सीधी जाकर क्लब का मेनगेट पार कर जाए । उस पुरुष की स्मृति उसके मानस-पट पर बिजली-सी कौंध गई थी । वह पुरुष तकिए का सहारा लिए गौरी का नाच देख रहा था । और बीच-बीच में कनखियों से कोने में सिकुड़-कर बैठी रेणु की ओर देख लेता था । फिर गौरी ने रेणु को वह मीठा शरबत पिलाया था । और जब रेणु ने आँखें खोली थीं...

आज उस पुरुष ने गॉगल्ज पहिन रक्खे थे । समय के व्यवधान से कुछ-कुछ बदल चला था उसका चेहरा । किन्तु रेणु का मन चीत्कार कर उठा ।

यह तो वही चेहरा है ! और वह उस चेहरे से दूर भागने के लिए छटपटा उठी। वह कहीं जाकर छुप जाना चाहती थी। छुपने की ठौर न मिलने पर धरती में धँस जाना चाहती थी रेणु !

केबिन में जाकर जल्दी-जल्दी कपड़े पहिन लिए थे रेणु ने। अस्त-व्यस्त। वह अपने बाबू को और एक बार भी अपना मुँह दिखलाना नहीं चाहती थी। उसका बस चलता तो वह बेथिंग कॉस्ट्यूम पहिने-पहिने ही क्लब के बाहर चली जाती। किन्तु वह नारी थी। नारीत्व के चिह्नों को लुका-छिपा कर ही रास्ते में जाना पड़ता था उसे। भूकम्प आया होता तो भी उसका नारीत्व उसको एक बार ऐसा ही परामर्श देता।

वह क्लब के गेट तक पहुँची तब तक उसके बाबू ने पीछे से आकर उसको पुकारा : "रेणु ! रेणु !! तू कहाँ जा रही है, रेणु !"

रेणु रुक गई। किन्तु उसने कोई उत्तर नहीं दिया। बाबू ने पूछा : "तुझे कहीं जाना है क्या, रेणु !"

रेणु का मौन नहीं टूटा। बाबू उसके कंधे पर हाथ रख कर बोला : "तू तो कह रही थी कि दिन में तुझे कोई काम नहीं है।"

रेणु के आँसू टपक पड़े। उसके दोनों गालों पर से बह चले वे आँसू। रेणु की छाती धड़धड़ा रही थी। जैसे वह छाती उसी क्षण फट पड़ेगी और रेणु धरती पर लोट कर प्राण दे देगी।

बाबू रेणु की उस मूर्ति को देखकर सकपका गया। वह हकला कर बोला : "मुझे माफ कर दे, रेणु ! मेरे कारण तेरा...

रेणु ने रोकर कहा : "आपका तो कोई दोष नहीं है, बाबू !"

"मैं इस अपमान का बदला लिए बिना नहीं रहूँगा।"

"किसका अपमान ? कौन-सा बदला ? आप कह क्या रहे हैं, बाबू !"

"रेणु ! तू मेरी बात मान। तू चल कर कपड़े बदल ले। तब हम दोनों फिर से पूल पर जाएँगे। अब की बार किसी ने भी कुछ कहा तो...

"मुझे तो पूल में नहाने का ऐसा चाव नहीं है।"

"किन्तु इस प्रकार तेरा चला जाना भी तो ठीक नहीं होगा, रेणु !"

"चला जाना तो ठीक ही होगा, बाबू ! चला आना ही ठीक नहीं था।"

"क्यों ?"

"यह आप अपने समाज से पूछिए और...

रेणु ने अपना वाक्य पूरा नहीं किया। बाबू ने पूछा : "और क्या ?"

रेणु के मुख से निकल गया : "अपने दिल से पूछिए।"

रेणु ने चोट मार दी। झोंक में आकर। चोट मारने की तनिक भी इच्छा न रहते हुए। बाबू सिर झुकाकर धरती की ओर देखने लगा।

क्लब के मेनगेट के बाहर ही बस-स्टैण्ड था। एक बस आकर रुकी। और रेणु बिजली-सी तड़पकर भागती हुई उस बस पर चढ़ गई। रेणु का बाबू मुँह बाए देखता रह गया। एक पल में ही वह सब हो गया था। उसको होश आया तब तक बस चल चुकी थी। वह बस का नम्बर भी नहीं देख पाया।

बस-कण्डक्टर ने रेणु के पास आकर पूछा : "आप कहाँ जाएगी, माँ !"

प्रश्न सुनकर रेणु को होश आया। यह तो उसने सोचा ही नहीं था कि कहाँ जाएगी। वह कण्डक्टर का मुँह देखने लगा। इसके पूर्व वह कभी भी बस में नहीं बैठी थी। बाबू की मोटर अथवा टैक्सी पर चढ़ने का ही अभ्यास था उसे। कण्डक्टर ने फिर कहा : "देर हो रही है। पैसे निकालिए, माँ !"

रेणु के पास पैसे कहाँ थे। बाबू के साथ बाहर निकलते समय अपना पर्स साथ ले जाने का नियम नहीं था। बाबू नाराज होता था। रानी माँ भी नाराज़ होती थीं। रेणु के पास पैसे नहीं थे। उसने चुपचाप अपनी अँगुली पर से हीरे की अंगूठी उतार कर कण्डक्टर की ओर बढ़ा दी।

कण्डक्टर ने अँगूठी लिए बिना ही पूछा : "अँगूठी का मैं क्या करूँगा, माँ !"

रेणु ने कहा : "टिकिट दे दो।"

"आपको जाना कहाँ है ?"

और रेणु के मुख से निकल गया : "सोनागाछी।"

बस में बैठे हुए स्त्री-पुरुष चमककर रेणु की ओर देखने लगे। बड़ा कौतूहल था उन सब की आँखों में। रेणु ने कोई अनहोनी बात कह डाली थी।

कण्डक्टर का स्वर सहसा कुछ कठोर हो गया। वह बोला : "तुम गलत बस पर चढ़ गई। यह बस तो सोनागाछी की ओर नहीं जाती। यह तो टालीगंज की बस है।"

तब तक बस प्रायः एक मील निकल चुकी थी। कण्डक्टर ने घण्टी बजा कर बस रोक ली। और रेणु वह अँगूठी कण्डक्टर की ओर फेंककर उतर पड़ी।

कण्डक्टर उसके पीछे पीछे उतर कर बोला, "अँगूठी ले जाओ। अँगूठी का मैं क्या करूँगा ?"

रेणु ने शान्त स्वर में कहा : "मेरे पास टिकिट के पैसे नहीं हैं।"

कण्डक्टर नरम पड़ गया। वह बोला : "पैसे मैं नहीं माँगता। तुम ऐसा करो कि एक टैक्सी लेकर चली जाओ। टैक्सी का किराया घर पर जा कर दे देना।"

बस चली गई। रेणु फुटपाथ पर खड़ी थी। और फिर एक टैक्सी को अपने निकट आते देख वह उसको रोककर उसमें बैठ गई। सिक्ख ड्राइवर ने पूछा : "किधर जाना है, माँ !"

रेणु ने कहा : "सोनागाछी।" ड्राइवर ने गाड़ी स्टार्ट कर दी। मूँछों पर ताव देकर। वह बार-बार विंडशील्ड पर लगे शीशे में अपनी आकृति देख रहा था। रेणु की आकृति भी। बार-बार मूँछों पर ताव देता हुआ। वह बार-बार किसी पंजाबी गीत की पंक्तियाँ गुनगुना उठता था।

: ४ :

रेणु ने टैक्सी में बैठे-बैठे ही निश्चय कर लिया कि वह सोनागाछी में ही जाकर रहेगी। उसने अपने आप से कहा : "सारा संसार जानता है कि मैं वेश्या हूँ। सारा संसार मानता है कि मैं समाज के सामने सिर नहीं उठा सकती। तो फिर मैं ही प्राइवेट होने का पाखण्ड क्यों करूँ ? मैं वेश्या हूँ। वहीं जाकर रहूँगी जहाँ वेश्याएँ रहती हैं। वहीं है मेरा स्थान। सोनागाछी में। रानी माँ की बाड़ी में नहीं।"

सोनागाछी में रेणु की एक परिचित रहती थी। रेवा। गौरी की बांधवी थी वह। बहुत पुरानी। रेणु गौरी के साथ उसके पास आ चुकी थी। बहुत बार। वह रेणु की भी बान्धवी बन चुकी थी। रेणु ने उसी से रुपये लेकर

टैक्सी का किराया चुका दिया।

गौरी ने रेणु को सौगन्ध दिला दी थी कि वह रेवा के पास जाने की बात रानी माँ से नहीं कहेगी। रानी माँ के बिगड़ उठने का डर था। व्यर्थ ही। रानी माँ सोनागाछी को बहुत ही जुगुप्सा की दृष्टि से देखती थी। अनेक बार वह दर-मोल करने वाले बाबू से कह बैठती थी: "आप तो सोनागाछी चले जाइए, बाबू! वहाँ मिलेगी सस्ती छोकरी। आटे-दाल के भाव। रानी माँ की बाड़ी में मोल-भाव नहीं होता।"

रेणु की समझ में नहीं आई थी रानी माँ की बात। सोनागाछी में भी वैसे ही मकान थे। वैसी ही लड़कियाँ। वैसे ही लोग आते थे। काम-पिपासा से जर्जर लोग। तो फिर अन्तर कहाँ था? उसने गौरी से पूछा था कि अन्तर क्या है। गौरी ने हँस कर कह दिया था: "बहुत बड़ा अन्तर है, रेणु! सोना-गाछी में प्रत्येक लड़की अपने ऊपर अपने-आप राज करती है। वह आने वाले बाबू से अपने आप सब कुछ तय कर लेती है। वह अपने-आप ही रुपया लेकर रखती है। वहाँ रानी माँ जैसियों की दाल नहीं गल सकती। तो फिर रानी माँ को सोनागाछी किस प्रकार पसन्द आए?"

रेणु को भी अच्छी लगी थीं सोनागाछी की लड़कियाँ। वे रानी माँ की लड़कियों की नाई एक दूसरी से डाह नहीं करती थीं। वे परस्पर हँस-बोल कर ही निभा देती थीं। इसलिए सोनागाछी में बस जाने का निश्चय करते हुए रेणु को दुविधा नहीं हुई।

रेणु रेवा के कमरे में पहुँची तो रेवा तीसरे पहर की नींद लेकर उठी थी। रेणु को अकेली आते देख कर वह विस्मित-सी हो गई। उसने पूछा: "ओ रेणु! तू अकेली ही आ रही है आज? गौरी को कहाँ छोड़ा?"

रेणु ने उत्तर दिया: "गौरी नहीं आई, दीदी!"

"तो तू कैसे चली आई?"

"तुम से एक काम है।"

"कैसा काम?"

"बहुत बड़ा काम। बोलो करोगी?"

"करूँगी, ज़रूर करूँगी। तू कह तो कि काम क्या है।"

"मुझे सोनगाछी में बसा लो, दीदी !"

"मर कलमुँही ! ठट्ठा कर रही है मुझ से !"

"नहीं, दीदी ! ठट्ठा नहीं कर रही। अच्छा मेरा मुख देख लो। सब समझ जाओगी।"

रेवा ने ध्यान से रेणु की ओर देखा। यह तो वह रोज-रोज की रेणु नहीं थी। अस्त-व्यस्त वेश। सिर के केश भी अस्त-व्यस्त। और गालों पर सूखे हुए आँसू। रेवा का दिल धक् से रह गया। वह रेणु का हाथ पकड़कर बोली : "बाड़ीवाली से झगड़ा करके आई है, हरामजादी !"

रेणु ने हँसकर कहा : "नहीं, दीदी ! मेरा तो किसी से भी झगड़ा नहीं हुआ।"

"तो फिर क्या बात है ?"

"तुम्हारे पास रहना चाहती हूं।"

रेवा डर गई। वह जानती थी कि बात रेणु की बाड़ीवाली के पास पहुंचेगी। और बाड़ीवाली झगड़ा करेगी। पुलिस को जानती थी बाड़ीवाली। पुलिस वाले उसकी बात मानते थे। वह रेवा को पकड़वा कर छोड़ेगी।

रेणु ने रेवा को असमंजस देखकर कहा : "मेरे पास किन्तु एक फूटी कौड़ी भी नहीं है, दीदी ! बस एक यही है।"

रेणु ने गले का नैकलेस उतार कर रेवा के आगे रख दिया। रेवा बिगड़ कर बोली : "ओ, हरामजादी ! तुझ से रुपया किसने माँगा है, कलमुँही ! ले पहन ले अपना नैकलेस। नंगा गला बहुत बुरा लगता है।"

रेवा ने नैकलेस रेणु के गले में बाँध दिया। फिर वह बोली : "मैं तो तेरी बाड़ीवाली की बात कह रही थी। वह झगड़ा करेगी।"

रेणु ने कहा : "बाड़ीवाली से मैं सुलट लूँगी। तुम तो बहुत डरती हो, दीदी !"

"मैं क्यों डरने लगी ? मैं क्या उसका दिया खाती हूँ ? मैं तो तेरी बात कह रही हूँ। बाड़ीवाली आई और तू भीगी बिल्ली के समान उसके साथ हो लेगी।"

"नहीं, दीदी ! नहीं। मैं नहीं जाऊँगी।"

"तो तेरी बाड़ीवाली के पास समाचार भेज दूँ ?"

"भेज दो।"

रेवा ने अपना नौकर रानी माँ की बाड़ी पर भेज दिया। यह कहने के लिए कि रेणु सोनागाछी में है और वहीं रहेगी। फिर उसने नए कपड़े निकाल कर रेणु को नहाने के लिए भेज दिया। रेणु नहाकर लौटी तो रेवा उसको सजाने के लिए बैठ गई। अपने हाथों से। वह आज सांझ से ही दलालों को बुलाकर रेणु को दिखलाना चाहती थी। रेणु चुपचाप बैठी सजती रही।

साँझ होते-होते रानी माँ और गौरी आ पहुँची। उनके साथ रेणु का बाबू और ननकू भी थे। रेणु को छाती से लगा कर रोने लगी रानी माँ। सोनागाछी के गुण्डों का भय दिखाया रानी माँ ने। व्यभिचारियों का भय भी। वे रेणु को न जाने कैसे-कैसे रोग लगा देंगे। किन्तु रेणु नहीं मानी। तब रानी माँ ने उसको धमकी दी कि वह उसे पुलिस के हाथों पकड़वा देगी। रेणु नहीं डरी।

रेणु के बाबू ने समझाया रेणु को। घोर पश्चात्ताप प्रकट करके। कहने लगा : "मेरी मत मारी गई थी, रेणु ! जो तुझे मैं उस क्लब में लेकर गया। अब की बार माफ कर दे। यह स्थान तेरे लायक नहीं है। रानी माँ की बाड़ी में नहीं जाना चाहती तो बालीगंज में अलग फ्लैट ले दूँगा।" किन्तु रेणु टस से मस नहीं हुई।

रानी माँ ने गौरी को कहा कि वह रेणु को समझाए। गौरी ने सबको कमरे के बाहर भेज दिया। फिर वह रेणु से बोली : "क्या चाहती है, कलमुँही !"

रेणु ने उत्तर दिया : "वह कीर्तन याद है, गौरी !

"चरण तुम्हारे, प्राण हमारे,
बांधें प्रेम की फाँसी !
सभी समर्पण, एकमना हो,
निश्चय हो गई दासी !"

"हाँ, याद है। उससे क्या ?"

"बस, अब कीर्तन ही गाऊँगी, गौरी ! मेरे अलबेले का आह्वान आया है। उसको लौटाऊँगी नहीं।"

"और खाएगी क्या ?"

"जो वे देंगे।"

"तेरा माथा फिर गया है, कलमुँही !"

"हाँ, गौरी ! अब यह माथा उनके ही चरणों में झुकेगा। उनके ही गीत गुनगुनाएगा। और किसी भी काम का नहीं रह गया यह माथा।"

गौरी बाहर निकल आई। उसने रानी माँ से कह दिया कि रेणु नहीं मानेगी। रानी माँ रेणु को बलात् उठा ले जाने के लिए तैयार हो गई। किन्तु रेणु के बाबू ने विद्रोह करके कह दिया कि बलात्कार वह नहीं होने देगा।

रानी माँ चली गई। गौरी भी। एक बार रेणु के गले मिलकर।

गली के दलाल आ जुटे। चारों ओर समाचार फैल चुका था कि रेवा के कमरे में एक नई जवानी आई है। भीड़ लग गई रेवा के कमरे के सामने।

और रेणु आँखें मूँद कर गा उठी :

> **"छल न करो, हम अबला अखला,**
> **यही उचित है तुमको !**
> **"नयन-कोर से यदि न निहारा,**
> **और नहीं गति हमको !**
> **"मान गया मन, प्राणनाथ बिन,**
> **प्राण मरण-सम हारूँ !**
> **"चण्डीदास यह पारस-मणि है,**
> **गूँथ गले में डारूँ !!**

रेवा ने भी आँखें मूँद लीं। दलालों ने भी। सबकी आँखों से अश्रुधार वह रही थी।
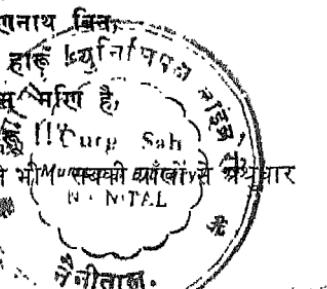
नटराज पुस्तक माला

सभ्यता की ओर	श्री गुरुदत्त	१)
भाग्य रेखा	,,	१)
दो भद्र पुरुष	,,	१)
अँधेरे-उजाले के फूल	श्रीमती शकुन्तला शुक्ल	१)
इत्ता-इत्ता पानी	श्री ब्रह्मदत्त	१)
बीती बात	श्री गुरुदत्त	१)
संस्कार संसद	सव्यसाची	१)
कमल-कुलिश	डॉ० रमानाथ त्रिपाठी	१)
पंकज और पानी	यायावर	१)
विद्यादान	श्री गुरुदत्त	१)
सत्य काम सोक्रातेज़	प्लैतॉन	१॥)